अनौपचारिका

समकालीन शिक्षा-चिन्तन की मासिक पत्रिका

जून, २०१२

कलाकार रवीन्द्रनाथ ठाकुर

❑
पूरे देश ने अभी हाल ही में रवीन्द्रनाथ ठाकुर की एक सौ पचासवीं सालगिरह मनायी। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर विश्व कवि थे और उनकी पुस्तक गीतांजलि को नोबेल पुरस्कार मिला था। अधिसंख्य लोग यही जानते हैं कि वे कवि थे, लेखक थे। मगर वे बहुत सधे हुए चित्रकार भी थे – यह बहुत कम लोग जानते हैं। उन्होंने साठ बरस की उम्र पार करने के बाद चित्रकारिता शुरु की थी और बहुत जल्दी उनकी गिनती विश्व के चुनिंदा चित्रकारों में होने लगी थी। गुरुदेव ने चित्रकारिता में भी अलग–अलग प्रयोग किये थे। यहां प्रस्तुत है उनकी एक कलाकृति। ❑
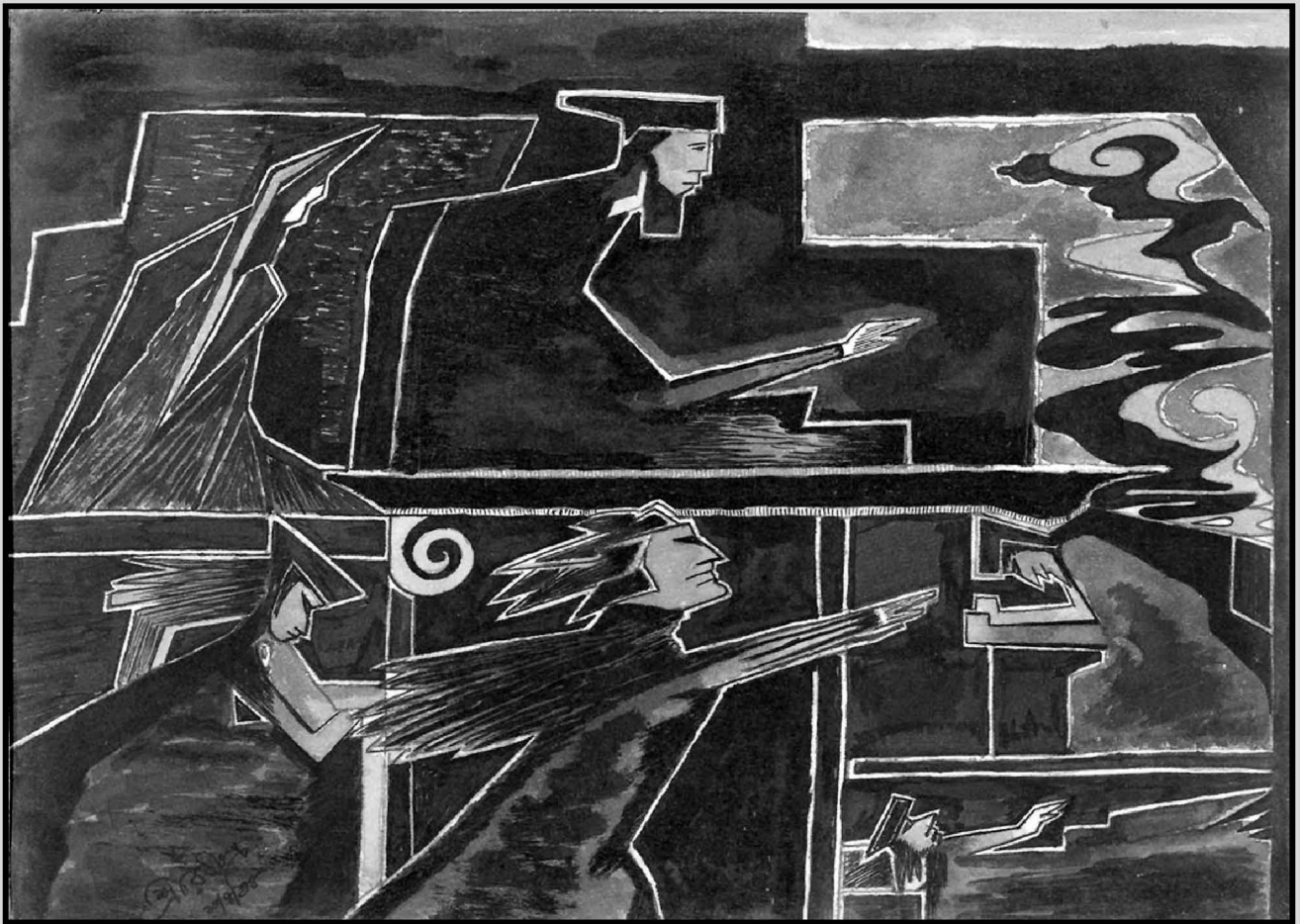
असतो मा सद्गमय।
तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्मा अमृतम्गमय।

अनौपचारिका

समकालीन शिक्षा-चिन्तन की पत्रिका

वर्ष : ३७ अंक : ६
जून, २०१२
ज्येष्ठ-आषाढ़ वि.सं. २०६९

☐
सम्पादक
रमेश थानवी

☐
प्रबन्ध संपादक
प्रेम गुप्ता

☐
प्रकाशन संपादक
दिलीप शर्मा

☐
- एक प्रति पन्द्रह रुपए
- वार्षिक सहयोग राशि एक सौ पचास रुपए
- संस्थाओं के लिए दो सौ पचास रुपए
- व्यक्तिगत सदस्यों के तीन वर्ष का चार सौ रुपए
- संस्थाओं के लिए तीन वर्ष का छः सौ रुपए
- मैत्री समुदाय की सहयोग राशि पन्द्रह सौ रुपए

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति
७-ए, झालाना डूंगरी संस्थान क्षेत्र
जयपुर-३०२ ००४
फोन - २७०७६९८, २७००५५९
फैक्स - ०१४१-२७०७४६४
ई मेल - raeajaipur@indiatimes.com
thanviramesh@gmail.com
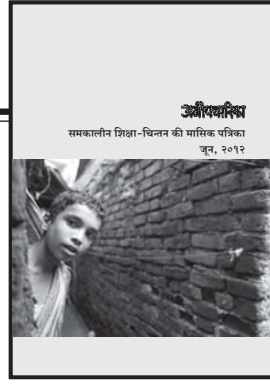
क्रम

पाठक अब इंटरनेट पर अनौपचारिका नीचे लिखे लिंक पर ऑन लाइन पढ़ सकते हैं -

http://speakerdeck.com/u/anoupcharika/p/June-2012

अनौपचारिका के पिछले अंक भी आप नीचे लिखे लिंक पर देख सकते हैं -

http://speakerdeck.com/u/anoupcharika/p/APril-2012

मोगा से सत्यप्रकाश उप्पल

अनौपचारिका नियमित प्राप्त हो रही है। इस पत्रिका में संकलित सामग्री सूचनाओं का आदान प्रदान मात्र नहीं होती। हमारे मौलिक चिन्तन को आंदोलित करती इस विचारोत्तेजक पत्रिका का प्रत्येक आलेख बल्कि प्रत्येक पंक्ति कुछ नया सोचने और कुछ नया करने के लिये प्रेरित करती है। शिक्षा से संबंधित यह एक अनूठी पत्रिका है। मैं कम से कम दो तीन दशकों से इस पत्रिका का नियमित पाठक हूं। इस पत्रिका के संपादक और संपादन के प्रति मैं अपना नमन अर्पित करता हूं।

सच तो यह है कि अनौपचारिका के तमाम सहयोगी रचनाकार बहुत ही मंझे हुए तजुर्बेकार लोग हैं जिनके पास समृद्ध अनुभव है और संवाद स्थापित करने की कला भी है। मैं उन सब के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूं।

अप्रेल, २०१२ के अंक में गिरधर राठी का आना अच्छा लगा। उनकी कुछ ताजा-तरीन कविताएं पढ़ीं। हिन्दी जगत के इस सम्मानित रचनाकार से संवाद भी अगर छपता तो और अच्छा रहता। पोकरण से आये भाई जेठमल रामावत के पत्र में जो चिन्ताएं प्रकट हुई हैं वे अपनी जगह बिल्कुल ठीक हैं। परिस्थितियां प्रत्येक क्षेत्र में कमोबेश इससे ज्यादा भिन्न नहीं हैं। दवा अपना असर नहीं दिखा रही है। फायदे की जगह पर नुकसान कर रही है। अध्यात्म की दूकानें हमारी भावनाओं का शोषण कर रही हैं। ऐसे समय में शिक्षा के अर्थ बदल जाएं तो कोई अचम्भा नहीं है। शिक्षा के मायने बदल गये हैं, मास्टरजी।

अनौपचारिका का संपादकीय सदैव मेरे लिये आकर्षण का केन्द्र रहा है **पंक्ति कभी पूर्णता नहीं देती** शीर्षक मुकम्मिल कविता है। पंक्तिबद्ध होकर तो केवल ड्रिल की जा सकती है। वहां संवाद की कोई गुंजाइश नहीं होती और जहां संवाद नहीं होता वहां जागरूकता नहीं होती। इसलिये आपने जो अनुभव किया वह बिल्कुल सही है। मेरा मानना है कि अगर आप पंक्ति की जगह अर्धचक्राकार अथवा घेरे में खड़े किये गये बच्चों को भी संबोधित करेंगे तब भी नतीजा कमोबेश यही होगा। आरोपित अनुशासन चाहे पंक्ति हो, घेरा हो अथवा चक्राकार हो सब बेकार होगा। इससे दूरियां बढ़ेंगी।

परन्तु अगर बच्चे अपनी इच्छानुसार, सुविधानुसार खड़े होकर अथवा बैठ कर सचमुच हमें सुनेंगे तो अपेक्षित परिणाम मिलने की संभावनाएं ज्यादा प्रबल होंगी। मित्रता स्थापित करने के लिये यह जरूरी है कि हम समान स्तर पर खड़े होकर बात करें। मेरा सोचना गलत भी हो सकता है। लेकिन जिस शिक्षा पर बच्चे के सर्वांगीण विकास की जिम्मेदारी है उस क्षेत्र में तो बहुत गम्भीरता से इस पर विचार होना चाहिये। मैं यहां पंक्ति के विरोध में नहीं हूं। पंक्ति का अपना महत्त्व है। हम जिससे मुकर नहीं सकते। मैं तो इस संपादकीय की काव्यमयता से ही अभिभूत हूं कि पंक्ति कभी पूर्णता नहीं देती। इस अपूर्ण और अनन्त यात्रा के मुसाफिरों के लिये मेरी शुभकामनाएं।❑

डॉ. एम.एम. बापना, भरतपुर

मैं वर्षों से अनौपचारिका का पाठक रहा हूं एवं इसका प्रशंसक भी। यह पत्रिका विशेष रूप से शिक्षाविदों एवं माता-पिताओं के लिये है- किन्तु नेताओं, समाज के अन्य लोगों एवं विद्यालयी प्रबन्धकों के लिये भी पढ़ने एवं मनन करने योग्य है। आपको साधुवाद।

मैं आपका ध्यान बहुत छोटी-सी घटना जो सत्य भी है और जिसका मैं स्वयं प्रत्यक्षदर्शी भी हूं की ओर आकर्षित करना चाहता हूं।

विद्यालयों में जो प्रेक्टिकल्स लेने के लिये बाहर से आते हैं उनकी मांगें पहले से ही विद्यालय प्रशासन के पास पहुंच जाती हैं और छोटी चीज से लगा कर सोने की चेन तक की फरमाइश भी की जाती है। मांग पूरी नहीं होने पर विद्यार्थी को हानि होती है और उसे बहुत कम अंक दिये जाते हैं। इसका असर उसके डिवीजन पर पड़ता है। इससे अध्यापकों की ईमानदारी और शिक्षा निष्ठा पर एक बड़ा प्रश्न चिह्न लग जाता है ? समाज और राष्ट्र का क्या भला करेंगे ऐसे अध्यापक ? मैं आपकी पत्रिका के माध्यम से इस बात को सभी तक पहुंचाना चाहूंगा, शायद कुछ सोच बदले। ❑

शिक्षा नहीं कोई कारोबार
यह है जनता का अधिकार

एक थे शंकर

जी हां, अब **शंकर** को जान लेना जरूरी है। यह जान लेना जरूरी है कि **शंकर** कौन थे। ये **शंकर शिवजी** वाले **शंकर** नहीं थे, **महादेवजी** वाले **शंकर** नहीं थे, मगर दिल्ली में रहने वाले एक वरिष्ठ नागरिक थे। पूरा नाम था **शंकर पिल्लै**।

शंकर एक साप्ताहिक अखबार के संपादक थे। अखबार का नाम था- **'शंकर्स वीकली'।** शंकर अपने आप में एक निराले आदमी थे। उनके हाथ में हुनर था। उन्होंने कार्टून बनाना सीख लिया था। कार्टून बनाने की एक नयी शैली विकसित की थी। उनको अपनी शैली और अपने कथ्य पर इतना भरोसा था कि वे अपने अखबार का नाम भी कोई सार्वजनिक नाम रखना पसंद नहीं कर सके थे। वे शंकर थे और अखबार शंकर्स वीकली था।

कई बरस तक अंग्रेजी में निकलने के बाद यह अखबार हिन्दी में भी निकला था लेकिन हिन्दी में बहुत चला नहीं। **शंकर** अपने अखबार में सिर्फ कार्टून छापते थे। कार्टून के नीचे स्वयं चुटकियां लेते हुए अथवा चुहुल करते हुए कुछ टिप्पणियां लिखते थे। वे स्वयं न लिखें तो दूसरे पत्रकार लिखते थे। उनका यह अखबार रोचक राजनैतिक विश्लेषण एवं व्यंग्य का एक बड़ा प्लेटफॉर्म था।

इस अखबार के लिये **शंकर** लगभग २७ बरसों तक लगातार कार्टून बनाते रहे । मैंने स्वयं शंकर को कार्टून बनाते हुए देखा है। इसलिए बड़ी हसरत के साथ उनकी तल्लीनता को और उनकी तल्खी को याद कर रहा हूं। वे जिस कमरे में कार्टून बनाते थे उस कमरे में एक कांच की खिड़की लगी थी। आने वाले मेहमान लोग बाहर गलियारे में खड़े होकर उन्हें कार्टून बनाते हुए देख सकते थे। एक लम्बा-चौड़ा सांवला सा आदमी सफेद कोट पहनकर हाथ में लम्बा सा ब्रश लिये सामने खड़े बोर्ड पर जब कार्टून बना रहा होता था तब वह पत्रकार कम और एकाकी साधक अधिक दिखता था। वैसे भी बुधवार के दिन शंकर किसी से मिलते-मिलाते नहीं थे। यह उनके कार्टून बनाने का दिन होता था। अखबार के बीच के पन्नों पर नाना विषयों पर टीप करते हुए कई कार्टून होते थे और एक कोने में **शंकर** स्वयं अपने पर टिप्पणी करते हुए एक कार्टून बनाते थे। इस कार्टून में वे अपने को **गधे** के रूप में चित्रित करते थे और अपनी पत्नी को **गधी** के रूप में। आज जब लोग अपनी तारीफ करते नहीं थकते हैं तब शंकर अपने में हर हफ्ते में कोई खामी निकाल लेते थे और खुद अपने पर हंसने का सामान परोस देते थे।
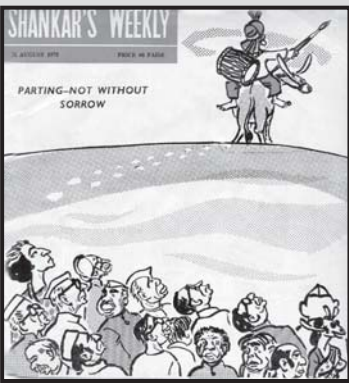
वे कहते थे कि हंसना-हंसाना समाज की बहुत बड़ी ताकत है। मगर साथ ही वे यह भी कहते थे कि हंसने-हंसाने का काम वही समाज कर सकता है जो सर्वथा आजाद है और लोकतांत्रिक है। सभी लोग **शंकर** के इस अखबार को रुचि से पढ़ते थे और कभी किसी के स्वाभिमान को कोई ठेस नहीं लगी थी। किसी ने कभी कोई एतराज नहीं किया था।

पाठकों को शायद यह जानकारी है कि **शंकर** भारत के **प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू** के अभिन्न मित्र थे। न केवल मित्र थे बल्कि उनकी नीतियों का सम्मान करते थे। उन्होंने दिल्ली में बहादुरशाह जफर मार्ग पर एक **नेहरू भवन** बनाया था। इस **नेहरू भवन** में एक तरफ गुड़ियाओं का एक अन्तरराष्ट्रीय संग्रहालय था। वहां पर देश-विदेश की गुड़ियाएं प्रदर्शित की गयी थीं। **जवाहरलाल जी** बच्चों से बहुत प्यार करते थे और **शंकर** भी अपना दुलार भारत के बच्चे-बच्चे को बांटते थे। यही वजह है कि उन्होंने हिन्दी, अंग्रेजी और अन्य भारतीय भाषाओं में बालकों के लिये साहित्य प्रकाशित करने के ट्रस्ट की स्थापना की थी और यह ट्रस्ट इसी नेहरू भवन में एक मंजिल पर चला करता था। **नेहरू** के प्रति ऐसी मित्रता के बावजूद **शंकर** अपने किसी भी कार्टून में **नेहरू** को बख्शते नहीं थे क्योंकि खुद **नेहरू** ने उनसे कहा था - **'मुझे कभी बख्शना मत शंकर।'** **नेहरू** के स्वाभिमान को कभी चोट नहीं लगी थी। उन्होंने ऐसा नहीं समझा था कि उनकी कभी किसी ने हेठी की है। वे बड़े लोग थे और वह दोस्ती भी बड़े लोगों की दोस्ती थी। आज के राजनेता भला क्या समझें कि बड़प्पन क्या होता है? शायद यही वजह है कि वे यह भी नहीं जानते कि कार्टून क्या होता है?
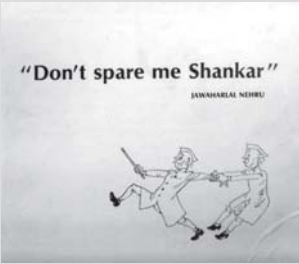
देश में जब आपातकाल की घोषणा हुई और हमारी आजादी का गला घोंटकर जब इमरजेंसी लगा दी गयी तब **शंकर** ने सहसा उस अखबार को बंद कर दिया। **शंकर** के आखिरी अंक का अंतिम संपादकीय बहुत ही बेशकीमती है और विश्वास है कि हमारी दुनिया इस बेशकीमती संपादकीय को सम्भाल कर रखेगी। उस संपादकीय की एक पंक्ति थी कि **- तानाशाही विनोद और हास्य कभी बर्दाश्त** नहीं कर सकती। **शंकर** ने लिखा था-**'डिक्टेटरशिप कैन नॉट एफोर्ड ह्यूमर'** इसी टिप्पणी के साथ **शंकर्स वीकली** बंद हो गया था। आज भी सच यही है। यह हमारे वर्तमान स्वरूप का सच है कि हम हास्य विनोद बर्दाश्त नहीं कर सकते। हम अहंकार और स्वाभिमान में फर्क नहीं समझ सकते। हम भीतर से खोखले हैं इसलिये शुद्ध हास्य में भी हम अपनी हेठी समझते हैं। हमारा अहंकार आज सिर पर चढ़ कर बोल रहा है और यही वजह है कि हम कार्टून में कही गयी बात को नहीं समझने के दुराग्रह पर अटक जाते हैं और बिना समझे यह घोषणा कर बैठते हैं कि किताबों में अब कार्टून नहीं होंगे। ऐसी स्थिति में **शंकर** अधिक याद आते हैं। उनके प्रति पुन: श्रद्धाभाव जागता है और फिर से हमारे सामने एक उद्दात शिक्षाविद् आकर खड़ा हो जाता है जिसका नाम था **शंकर पिल्लै।** ❑

रमेश थानवी

न मेधया

❑
कृष्णबिहारी मिश्र

भाई कृष्णबिहारी मिश्र हिन्दी के सुपरिचित एवं वरिष्ठ साहित्यकार हैं और उम्र भर अध्यापन का काम करते रहे हैं। अनौपचारिका के पाठक यदि ठीक से याद करें तो उन्हें यह नाम परिचित ही लगेगा। मिश्र जी की एक पुस्तक कुछ बरस पहले आयी थी उसका नाम था -'कल्पतरु की उत्सव लीला।' यह पुस्तक रामकृष्ण परमहंस एवं उनके शिष्यों के जीवन प्रसंगों पर आधारित आत्मकथा की तरह लिखी गयी थी। जिन्होंने उस पुस्तक को अभी तक नहीं पढ़ा है वे एक बहुत बड़े सुख से वंचित रहे हैं। उसके बाद मिश्रजी की फिर एक पुस्तक आयी है जिसका नाम है-'न मेधया।' इस पुस्तक में अधिसंख्य लेख रामकृष्ण परमहंस के जीवन को और उनके चिन्तन को निरे लालित्य के साथ प्रस्तुत करते हैं। इसी पुस्तक का अंतिम लेख 'न मेधया' है जिसे हम यहां जस का तस प्रकाशित कर रहे हैं। इस लेख का कथ्य बहुत भरा-पूरा है। पाठक कृपया आनन्द लें। ❑ सं.

बटो के अंग-अंग में थिरकती आस्था चित्त को आलोकित कर देती है। उड़ीसा के गांव में जनमा **बटो** मेरे कॉलेज में चतुर्थ श्रेणी का कर्मचारी है। तीन बेटियों का बाप है। छोटी तनख्वाह और सुरसा की तरह बढ़ने वाली महंगाई का आतंक। लेकिन **बटो** का उल्लास म्लान नहीं पड़ता। जागतिक प्रपंच से आहत होकर प्राय: खिन्न रहने वाले मेरे जैसे सुविधाजीवी आदमी को, पता नहीं कैसे, अपनी जाति का मानता है और मुझे गुंडी पान खिलाने के बहाने प्राय: रोज ही **माता आनन्दमयी** का लीला-प्रसंग अपनी ऋजु शैली में सुनाया करता है। 'पंडीजी, आप से सच कहता है। मां का दर्शन के वास्ते हम अपना नौकरी छोड़ दिया था।' 'अच्छा।' मेरी विस्मित मुद्रा से उत्साहित होकर वह कहने लगा, 'बहुत पहले का बात है। तब हम बहुत छोटा था। केमेस्ट्री डिपाट में तब भी काम करता था। लाड़ली मोहनबाबू बड़ा कड़ा प्रोफेसर था। मां तारापीठ में आया है, हमको एक आदमी बोला। लाड़ली बाबू से छुट्टी मांगा। वह छुट्टी नहीं देगा, बोला। हमको बड़ा गुस्सा आया। इस्तिफा लिखकर हम तारापीठ चला गया। मगर मां तो सब कुछ समझ जाता है। मुझको बोला, 'तुम झगड़ा करके आया है। काम से भागना भगवान को अच्छा नहीं लगता। जाकर अपना काम करो।' भक्ति-गद्‌गद् कंठ से **बटो** बोला, 'मां सब कुछ समझ जाता है। आपका मन में क्या है, मां बिना बताने से ही समझ जाता है। मां मन का सब कुछ समझ जाता है।' **बटो** की बात मैं धैर्यपूर्वक सुनता हूं, महज इतने से उसकी भावना प्रसन्न हो जाती है और मुझे अपनी जाति का आदमी मान लेता है। मेरे सुख-सौभाग्य की सहज चिन्ता से वह मुझे माताजी का अनुग्रह भाजन बनाने को व्याकुल रहता है। आग्रहपूर्वक **बटो** ने मुझे दो बार **माता आनन्दमयी** के दर्शन कराये। एक बार

आगरा पाड़ा आश्रम में, जब मेरी छोटी बहन रमा और मेरी गृहिणी मेरे साथ थीं। और दूसरी बार सियालदह रेलवे स्टेशन पर अपार भीड़ में वह मुझे खींच ले गया था और माताजी के दर्शन कराकर वह इतना खुश हुआ था कि जैसे विशेष पुण्य अर्जित कर लिया हो। एक दिन मुझे कॉलेज में न पाकर वह मेरे घर दौड़ा-दौड़ा आया। मैं अस्वस्थ था। घर में छुट्टी लेकर पड़ा था। माताजी के शुभागमन की सूचना लेकर आया था। मेरी पत्नी और साधु संस्कार वाले मेरे वैरागी मउसेरे भाई दीनबन्धु को माताजी के दर्शनार्थ आगरापाड़ा आश्रम में खींच ले गया था।

बहुत वर्षों पहले की घटना है। अपने नियम के मुताबिक वह रोज मुझे गुंडी पान खिलाने प्राध्यापक कक्ष में आता है। कहने लगा, 'माताजी का बहुत बड़ा सभा हुआ था देशप्रिय पार्क में। माताजी ऐसा बोला कि सब लोगों का मन दूसरा माफिक हो गया।' मैंने पूछा, 'माताजी ने क्या प्रवचन दिया ?' माताजी के बारे में दूसरा-दूसरा लोग बोला। लोग बहुत प्रार्थना किया तो माताजी बोला, ***'राम कृष्ण हरि, एई सत्य कथा, आर सॅब बेथा, बेथा, बेथा।'*** इसके ऊपर और क्या होगा, पंडीजी, मां तो सब कुछ बोल दिया। और **बटो** की ऋजु मुद्रा ने मुझे चमत्कृत कर दिया था। मैंने लक्ष्य किया, बड़ी-बड़ी मेधा के मालिकों को पोथियों का भंडार जो समाधान नहीं दे पाता वह समाधान-आलोक अल्पमति **बटो** ने माता **आनन्दमयी** के हृदय से निकले कुछ सरल शब्दों से उपलब्ध कर लिया है। उपाधि-विशिष्टता और पद-विशिष्टता की ग्रंथि से वह मुक्त है। शायद इसलिये तर्कजाल की ठगिनी माया के प्रपंच में उसका मन नहीं उलझता और ऋजुता की ऐसी पूंजी उसके पास है कि सत्य का महंगा सौदा सहज ही कर लेता है। उसका गार्हस्थिक बोझा कम भारी नहीं है, लेकिन 'सत्यकथा' से जुड़ी उसकी आस्था उसे व्यथा-मुक्त रखती है। पंडितों-ज्ञानियों को जो त्रास-संत्रास घेरे रहते हैं, **बटो** उस विषैली आबोहवा को पहिचानता तक नहीं। वह दूसरी लहर के साथ क्रीड़ारत है और अपने उपलब्ध आस्वाद को समाज में बांटने के लिये बेचैन रहता है। उसमें सहज उदारता है। शायद इसीलिये अभाव-बोध की यंत्रणा से उसका मन रिक्त है। **बटो** के बारे में सोचते मुझे **माता टेरेसा** का कारुण्य स्मरण हो आता है। पृथ्वी के सर्वाधिक समृद्ध राष्ट्र अमरीका के भाव-दारिद्रय से करुणाद्र होकर **माता टेरेसा** ने कहा था, ***'रोटी, वस्त्र, आवास की समस्या का समाधान खोज पाना कठिन नहीं है, कठिन है अकेलेपन की यंत्रणा के रोग का उपचार।'*** **बटो** इस रोग से मुक्त है। **रामकृष्ण परमहंस** के आत्मीय शिष्य **लाटू महाराज** की तरह वह गृहत्यागी परिव्राजक नहीं है, गृहस्थ है। तीन-तीन बेटियों का ऋण है उसके अर्थ-दुर्बल कंधे पर। अनुज -पुत्र को आदमी बनाने की जिम्मेदारी के प्रति सजग-सक्रिय है। लेकिन भाव-संपन्नता उसके उल्लास को पोषण देती रहती है, जागतिक बोझ की गुरुता उसे क्लान्त नहीं करती, उसे अकेलेपन की यंत्रणा का स्वाद नहीं मालूम है। मेरे जैसा पढ़वइया **बटो** की जाति का आदमी कैसे हो सकता है। मगर **बटो** की बिरादरी क्षीण नहीं है। भारत की माटी हर काल में ऐसी फसल उगाती रही है जो 'सत्य कथा' के खाद-पानी से फूलती-फलती और अपने वंश-प्रवाह को समृद्ध करती रहती है। **बटो** की जाति के असंख्य चरित्र हैं इस देश में, जिन्हें शिक्षा की औपचारिक सुविधा नहीं उपलब्ध हुई, नाना प्रत्यूह जिनके जागतिक विकास की राह छेंकते रहे हैं और गृहस्थी के पचड़े से जो दिन-रात जूझते रहते हैं, फिर भी भहरा कर गिर नहीं जाते, समस्यावाहिनी से पंजा लड़ाने की कला उन्होंने अर्जित की है और अपनी लोक-यात्रा को ऊर्ध्वमुखी आयाम से जोड़ने के लिये सदैव सजग-सचेष्ट रहते हैं। और धवल धरातल के प्रति उनके मन की टान इतनी प्रबल है कि बड़े से बड़े प्रलोभन को वह लात मार सकते हैं। **बटो** बताता है, **माता आनन्दमयी** के दर्शन के लिए उसने नौकरी छोड़ दी थी। और नामी-गिरामी विद्या-विशिष्ट लोगों के जीवन का यथार्थ है कि हल्के प्रलोभन से उनके चरित्र की धुरी हिल जाती है। 'वाक्य-ज्ञान की निपुणता' और वाक् चातुरी भोग-उपकरणों का सहज ही स्वामी बना देती है, लेकिन चारित्रिक धवलता की हिफाजत कर पाना किसी-किसी से सम्भव होता है। **बटो** की जाति के लोग चारित्रिक ढाही की चपेट में आने से बच जाते हैं। बचना कठिन होता है उनके लिये जिन्हें अपने वैदुष्य का गुमान होता है। अपनी विकट ग्रंथि के चलते समाज से भी वे अलग-थलग पड़ जाते हैं।

मेरे जैसा पढ़वइया बटो की जाति का आदमी कैसे हो सकता है। मगर बटो की बिरादरी क्षीण नहीं है। भारत की माटी हर काल में ऐसी फसल उगाती रही है जो 'सत्य कथा' के खाद-पानी से फूलती-फलती और अपने वंश-प्रवाह को समृद्ध करती रहती है।

आर्ष मेधा ने विद्या की परिभाषा रची थी... 'विद्या सा या विमुक्तये'... जो मुक्त करे वही विद्या है। लेकिन विद्या-उपाधि का दर्प मुक्ति नहीं बन्धन का कारण बनता रहा है। रामकृष्ण की धारणा ठीक लगती है कि ग्रंथ ग्रन्थि का जनक है। इसलिये विकुंठ चित्त से दीपित साधुता के सामने निरुपाय होकर विद्या-विभूति को झुकना पड़ता है। सहज **सन्त तुकाराम** के सामने **जगन्नाथ भट्ट** को झुकना पड़ा था। नमित होने में ही विद्या की कृतार्थता सिद्ध होती है। **रामकृष्ण परमहंस** और उनके परम भक्त **नाग महाशय** तथा **लाटू महाराज** की सामान्य विद्या-पूंजी बहुत क्षीण थी, किन्तु उनके आध्यात्मिक उत्कर्ष के सामने बड़ी-बड़ी हस्ती निष्प्रतिभ लगने लगती थी। **माता आनन्दमयी** अपने बारे में भक्तों और विद्या विशिष्ट श्रोताओं से प्राय: कहा करती थीं, ***'यह लड़की पढ़ी लिखी नहीं है। यह देह विद्या से रिक्त है।'*** मगर **महामहोपाध्याय पंडित गोपीनाथ कविराज** जैसे असाधरण मनीषी और बड़ी-बड़ी विद्या-विभूतियां तथा अध्यात्म-लोक के असाधारण पुरुष उनके सामने विनीत थे। रोशनी के संधान में **महर्षि रमण** के यहां दुनिया के कोने-कोने से **सॉमरसेट मॉम** जैसे प्रख्यात विद्या-विशिष्ट पुरुष और साहित्यकार पहुंचते रहते थे, मगर सत्य-साक्षात्कार के लिये विद्या-वैभव को **महर्षि** अपर्याप्त मानते थे, अध्यात्म ज्योति को उपलब्ध करने की अनुशासन-विधि सर्वथा भिन्न होती है।

बटो जैसे ऋजु चरित्रों को करीब से समझने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि अध्यात्म, जो मनुष्यता का ही पर्याय है, से मदरसे की सनद का कुछ लेना-देना नहीं है। यह सनद उस विद्या का प्रमाण-पत्र नहीं है जिसे पुराने लोगों ने मुक्त करने वाली ज्योति माना था। यह मुक्त नहीं करती, उलझाती और बोझा बढ़ाती है। **बटो** विद्या-बोझ से मुक्त है, इसलिये उसकी आस्था अक्षत है और उसकी राह में उलझन कम है। **बटो** का अध्यात्म सहज स्फूर्त है, अलंकार नहीं है। नये अभिजात वर्ग ने अध्यात्म को और 'योगा' को अपने ढेर सारे शोभा प्रतीकों में सम्मिलित कर लिया है। ड्राइंग रूम में हस्त-शिल्प के पदार्थों के साथ छंटाक भर अध्यात्म रखना जरूरी हो गया है। इसके अभाव में श्रीमन्तों और तथाकथित बुद्धिजीवियों का शोभा-छन्द लंगड़ाने लगता है जैसे। और एक यह **बटो** है जो जीवन की सार्थकता और वास्तविक आस्वाद को पाने के लिये अध्यात्म की सच्ची ऊष्मा से, मानवी संवेदना-छन्द से जुड़ा रहना और सहज सद्भाव को क्षत करने वाले बांकपन से बचना जरूरी मानता है।

आधुनिक रईसी का तकाजा है, लोग अध्यात्म और 'योगा' से जुड़ रहे हैं। योग उनकी प्रकृति के प्रतिकूल पड़ता है, 'योगा' उनकी संस्कृति के अनुरूप बैठता है। नयी भाषा-मुद्रा सभ्यता की अधोगामी यात्रा का संकेत दे रही है। पर आधुनिकता का जोम इसी मुद्रा में चमकता है। इसलिये उनके यहां उसी का मान है। सेठ-साहूकारों में ही नहीं, तथाकथित विद्याव्रतियों में भी 'योगा' की बड़ी-बड़ी दुकानें खुल गयी हैं। और इस व्यापार के बड़े-बड़े सौदागर अन्तर्राष्ट्रीय बाजार पर अपना प्रभुत्व जमाते जा रहे हैं। भगवान जगन्नाथ के प्रदेश के ग्रामीण **बटो** को इस व्यापार की कुछ भी जानकारी नहीं है। वह शायद व्यथा से दूर रहना चाहता है, इसलिये 'सत्यकथा' से जुड़ा रहना चाहता है। 'सूधो'-मार्ग का यात्री है। गोपियों की तरह उसे भी उद्धव की राह अच्छी नहीं लगती। नये कांटों से घबड़ाता है, भले ही वे अध्यात्म का हल्ला बोलते रोपे जा रहे हों। नये श्रीमन्तों और आधुनिक ज्ञानियों को चाकचिक्य विवर्जित वातावरण रुचता नहीं। उनकी रुचि का चतुर धर्म-व्यवसायियों को पता चल गया है। इसलिये अपना व्यवसाय जमाने के लिये वे उन्हें अपनी मुद्रा-सिद्धि से भरपूर पोषण दे रहे हैं। **बटो** को पोषण-प्रकाश मिलता है **माता आनन्दमयी** की ऋजु वाणी से। उस अध्यात्म-वाणी की व्यंजना वह सहज ही पकड़ लेता है। उसके दीये की बाती जल गयी है। अपनी धुन में मगन रहता है। आधुनिक विद्या-व्यापारियों की तरह निर्वासन की पीड़ा से घायल नहीं है। अवसाद के धुएं से धूमायित नहीं है। गांव छोड़कर वर्षों से महानगर में नौकरी करता है, लेकिन निपट देहाती शैली में लोगों से मिलता, बतियाता है। हंसता रहता है और भागवत् भाव से अपने पात्र को समृद्ध करने की चिन्ता-चेष्टा में रहता है। **बटो** की राशि **स्वामी अद्भुतानन्द** से मिलती है। अद्भुत आवेग था छपरा के सर्वहारा चरित्र **लाटू** में। कलकत्ते के श्रीमन्त परिवार के भृत्य

भगवान जगन्नाथ के प्रदेश के ग्रामीण बटो को इस व्यापार की कुछ भी जानकारी नहीं है। वह शायद व्यथा से दूर रहना चाहता है, इसलिये 'सत्यकथा' से जुड़ा रहना चाहता है। 'सूधो'-मार्ग का यात्री है। गोपियों की तरह उसे भी उद्धव की राह अच्छी नहीं लगती। नये कांटों से घबड़ाता है, भले ही वे अध्यात्म का हल्ला बोलते रोपे जा रहे हों।

लादू को **रामकृष्ण** की आध्यात्मिक विभूति ने इतने जोर से खींचा कि आगा-पीछा सोचे बगैर उसने नौकरी छोड़ दी और दक्षिणेश्वर की दुनिया में भाग गया। **बटो** बताता है, **माता आनन्दमयी** के दर्शन के लिये उसने भी नौकरी से इस्तीफा दे दिया। वह भावावेग, वह पागल लहर आज दिखाई नहीं पड़ती। तर्क से तो लोग अपना हर मामला तय करते हैं। सुविधा-सुरक्षा के लिये अनुकूल तर्क रच लेने में विद्या-व्यापार से जुड़े लोग सक्षम हैं। तर्क बुरा नहीं है।

विज्ञान-युग का यही तकाजा भी है, मगर अपने आदर्श और आस्था के लिए मर मिटने वाली सनक का कम्प्यूटर-संस्कृति के निकष पर क्या कुछ भी मूल्य नहीं है ? हो या न हो, **बटो** अपनी धुन छोड़ने वाला नहीं है। अपनी आस्था से 'बेथा' यानी व्यथा का सौदा करना उसे पसन्द नहीं है जैसे विद्या-लोक के पीठाधीश अपनी कूट बुद्धि से निर्मित पैनी रणनीति त्यागने को तैयार नहीं है, भले ही वह विद्या-गरिमा की ढाही का कारण बन रही हो, भले ही वह उनके त्रास-संत्रास का बोझा बढ़ाने वाली सिद्ध हो रही हो। **ज्ञानमूर्ति शंकराचार्य** उन्हें टोकते हैं, ***'ज्ञाते तत्त्वे कः संसारः,'*** टोकते रहें, विद्या-व्यापारी आज के तत्त्वज्ञान के कायल हैं। आज का तत्त्वज्ञान कहता है, गोली मारो धर्म-बुद्धि को, सारे आदर्शों-मूल्यों को। आंख मूंदकर पैसा बटोरो अन्यथा बेचारे बन जाओगे। इसलिए हर मूल्य पर अपनी धन-सम्पदा बढ़ाने को लोग आकुल-व्याकुल हैं। मगर **बटो** न व्याकुल है, न बेचारा। प्रकाश से जुड़ा हुआ है और उल्लसित चित्त से लोगों को प्रकाश बांट रहा है। **विनोबा** बुद्धिजीवियों पर आरोप लगाते हैं, ये बुद्धिजीवी नहीं, इन्द्रियजीवी हैं, अपने भौतिक पोषण की चिन्ता के कायल हैं, इसलिए वाक्-चातुरी से सत्य को ढंकने वाला जाल बुन रहे हैं, हिंसा और लोक-शोषण की आबोहवा रच रहे हैं। उर्दू शायर **गुलाम रब्बानी तांबा** उदास हैं कि पूरी की पूरी पीढ़ी सोने की तलाश में उलझ गयी:

न तो रंज है न मलाल है
मुझे सिर्फ इतना ख्याल है,
वह अजीब दानिशे अस्त्र थी
जो तलाशे जर में उलझ गयी।

मगर विद्या-व्यापारी लोकचक्षु की चिन्ता छोड़कर युगधर्म के इशारे पर नाच रहा है और अपनी भूमिका के प्रति पूर्ण आश्वस्त है।

बटो की दमकती आस्था-आभा को देखता हूं और विद्यालोक के धुंआते चेहरे तथा रिक्त चरित्रशाला पर नजर पड़ती है तो अपनी लघुता काटने लगती है। **बटो** का मन एक बड़ी रोशनी से जुड़ा है। अपने उल्लास की साझेदारी के लिये वह मुझे आग्रहपूर्वक आमंत्रित करता रहता है। **बटो** न जाने क्यों मुझे अपनी बिरादरी का मानता है और रसायनशास्त्र विभाग जैसी ही प्रहरी-दृष्टि मुझ पर भी रखता है। **बटो** का अहेतुक छोह चित्त को आलोकित कर देता है। ❑

७-बी, हरिमोहन रॉय लेन,
कोलकात्ता -७०००१५
मो. ०३३-२२५१०१८२

मौन का स्वर

❑

सुदेश बत्रा

मौन हो जाने पर भी
बजते रहते हैं बहुत से शब्द
बड़े बड़े घंटों की तरह
आक्रान्त करते रहते हैं चेतना को
जैसे पछाड़े खाती हों सागर की लहरें
अतल गहराई तक
हो उठा हो मंथन
मन का विक्षोभ
टकराता है समय के शिलाखंडों से
चूर-चूर हो उठता है।
किसी प्रगाढ़ शान्ति का यज्ञ-पर्व
आहत हो उठती है। समिधा चिन्तन की
मन्दिर के घंटों सी टकराती
अपनी ही जीवेषणा
बड़वानल सी सुलग उठती है
नभ के किसी टुकड़े में
छेद हो जाए इतना
कि टपक पड़ें। चन्द अमृत की बूंदें।
युगों से प्यासी धरती की
छोटी सी अन्तर्भेदी सतह
तृप्त, परिश्रान्त हो जाये
मौन सन्नाटा नहीं
वाणी की साध बन जाये। ❑

बी१०७/१०४, कदम्ब अपार्टमेंट्स,
उदय मार्ग, तिलक नगर, जयपुर

सवाल भारतीय भाषाओं के विकास का

❑

नारायण दत्त

भाई नारायणदत्त जी कन्नड़ भाषी होते हुए भी हिन्दी के वयोवृद्ध पत्रकार हैं। मराठी, गुजराती, हिन्दी, संस्कृत एवं कन्नड़, तेलगु आदि कई भारतीय भाषाओं पर आपका समान अधिकार है। भारत में कई पत्रकारों ने आपसे न केवल संपादन सीखा है बल्कि यह कहना अधिक उचित होगा कि उनसे हिन्दी लिखना सीखा है। नारायण दत्त जी नवनीत के संपादक रहे और फिर पीटीआई की हिन्दी फीचर सर्विस के संपादक भी रहे। नारायण दत्त जी को पिछले दिनों महाराष्ट्र सरकार ने सम्मानित किया तो उन्होंने बहुत ही संक्षिप्त व्याख्यान में न केवल भारतीय भाषाओं के विकास की चिन्ता को व्यक्त किया बल्कि भाषाओं से जुड़ी भारत की अखंडता की ओर भी संकेत किया। प्रस्तुत है पिछले वर्ष हिन्दी दिवस के अवसर पर मुम्बई में दिया गया उनका व्याख्यान। ❑ सं.

मैं आज हिन्दी समेत तमाम भारतीय भाषाओं की अस्मिता के लिये जो विकट संकट पैदा हो गया है, उसकी चर्चा करना चाहता हूं।

अंग्रेजी आज सुरसा राक्षसी बनकर तमाम भारतीय भाषाओं को निगलती जा रही है, जीवन-व्यवहार के तमाम क्षेत्रों से उन्हें बेदखल करती जा रही है। एक तरह से उसने हम भारतवासियों से यह बात मानसिक और बौद्धिक रूप से स्वीकार करवा ली है कि सत्ता, समृद्धि और सामाजिक प्रतिष्ठा की एकमात्र भाषा वही-यानी अंग्रेजी ही है। इसका सबूत यह है कि हम सभी ने ह्न चाहे हम कश्मीर के बाशिंदे हों या केरल के, चाहे हम अरुणाचल प्रदेश में रहते हों या कच्छ में ह्न सिर झुकाकर चुपचाप यह स्वीकार कर लिया है कि हमें अगर अपने बच्चों का भविष्य संवारना है तो सिवा इसके कोई चारा नहीं है कि हम उसे अंग्रेजी के माध्यम से तालीम दिलवाएं; वरना हमारा बच्चा अकिंचन, अधिकारहीन और असहाय आदमी तथा देश की विशाल आबादी का एक गुमनाम आंकड़ा बनकर रह जायेगा। यही कारण है कि आज समूचे देश में अंग्रेजी माध्यम वाले स्कूलों की मांग तेजी से बढ़ती जा रही है और उसी हिसाब से हर जगह अंग्रेजी माध्यम वाले स्कूल धड़ाधड़ खुलते जा रहे हैं।

आज की जो बुजुर्ग पीढ़ी है यानी मेरी पीढ़ी, उसे याद है कि उसके अभिभावकों का यह दृढ़ विश्वास था कि हमारी अपनी भाषाओं में कोई बुनियादी खामी या खराबी नहीं है और विकास का अवसर मिले तो वे विश्व की किसी भी समृद्ध भाषा का मुकाबला कर सकती हैं और तमाम ज्ञान-विज्ञान की वाहक और प्रशासन, प्रबंध और व्यापार-वाणिज्य का समर्थ माध्यम बन सकती हैं। इसी विश्वास से प्रेरित होकर

उन्होंने भारतीय भाषाओं को संस्कृत और फारसी के दबदबे से, अंग्रेजी के आतंक से मुक्त कराने और स्वतंत्र व समर्थ आधुनिक भाषाएं बनाने की मुहिम छेड़ी और अपनी भाषाओं में नये प्राण फूंके।

यहां पर विशेष रूप से याद करने योग्य बात यह है कि यह सब उस जमाने में हुआ जब हमारे देश पर अंग्रेजों की हुकूमत थी। तो अब, यानी अंग्रेजी शासन से मुक्त होने के छह दशक बाद, सारे देश में उलटी गंगा क्यों बह रही है ? क्यों वकील-डॉक्टर-इंजीनियर आदि तमाम पेशेवर लोगों, व्यापारियों तथा उद्यमियों, प्रशासकों और राजनीतिज्ञों ने ही नहीं, किसानों-दस्तकारों-मजदूरों तक तमाम वर्गों के भारतीयों ने अंग्रेजी की मोहिनी के आगे हथियार डाल दिये हैं ? हमें उस पर गंभीरता से विचार करना होगा और इसका कारगर इलाज तलाशना होगा।

इसे बहुराष्ट्रीय कंपनियों का षड्यंत्र कहकर हम अपना पल्ला नहीं झाड़ सकते। बहुराष्ट्रीय कंपनियों का उद्देश्य पैसा कमाना है। यों भी, जिस साम्राज्य में सूरज कभी नहीं डूबता था उस महाशक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्य से जूझकर अपने को आजाद करने वाला देश, दासता की बेड़ियों में जकड़े दूसरे बीसियों एशियाई-अफ्रीकी देशों की स्वतंत्रता का मार्ग प्रशस्त करने वाला हमारा देश अगर संकल्प कर ले तो बहुराष्ट्रीय व्यावसायिक संगठनों से भी जूझ सकता है और उन्हें अपना रंग-ढंग बदलने को मजबूर कर सकता है। आवश्यकता है स्वभाषा-प्रेम, स्वाभिमान और संकल्प की। मगर मुश्किल यह है कि हम सामूहिक हित की दृष्टि से नहीं, निजी स्वार्थ की दृष्टि से सोचने के आदी हो गये हैं।

तो यह है भारतीय भाषाओं के प्रेमियों के सामने असली चुनौती। हमारा हिन्दी दिवस मनाना तभी सार्थक होगा, जब हिन्दी तमाम भारतीय भाषाओं के साथ मिलकर अंगेजी के इस सर्वग्रासी रूप का कारगर प्रतिरोध करे।

अंत में मैं एक बार फिर महाराष्ट्र राज्य हिन्दी एकेडमी के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं कि उसने मेरी अल्प-सी हिन्दी सेवा को इतना महत्त्व दिया। निजी तौर पर मैं तो पहले से ही महाराष्ट्र का कर्जदार हूं। महाराष्ट्र की धरती पर मैंने लगभग आधी सदी हिन्दी में पत्रकारिता की और अपनी जीविका चलायी। असल में हमारे पूरे परिवार पर महाराष्ट्र का सांस्कृतिक ऋण रहा है। मेरे पूज्य नानाजी महामना गोखले की सर्वेंट्स ऑफ इंडिया सोसायटी के आजीवन सदस्य थे। मेरे पिताजी महर्षि कर्वे के प्रशसंक थे और उन्होंने उनकी आत्मकथा 'लुकिंग बैक' का कन्नड़ में अनुवाद किया। मेरे बड़े भाई ने दस वर्ष मुंबई में अंग्रेजी में पत्रकारिता की। फिर भला मेरी पीढ़ी का कौन भारतीय पत्रकार होगा जो लोकमान्य तिलक का ऋण स्वीकारने में धन्यता अनुभव न करे।

महाराष्ट्र सरकार की संरक्षता में काम करने वाली महाराष्ट्र राज्य हिन्दी एकेडमी ने आज हिन्दी दिवस के अवसर पर अपना अखिल भारतीय हिन्दी सेवा सम्मान मुझ कन्नड़भाषी हिन्दी पत्रकार को प्रदान किया, यह मेरा अहोभाग्य है। किन्तु मैं अनुभव करता हूं कि मेरे निजी सौभाग्य से बढ़कर यह संपूर्ण भारत की भावात्मक और सांस्कृतिक एकता का प्रतीक है। मेरी विनम्र राय में, इसी एकता और एकात्मता की नींव पर भारत की राजनैतिक अखंडता टिकी हुई है। ❑

२३९/६, मेन ब्लॉक फॉर जय नगर
बेंगलूरु

स्मृति-शेष

अदम गोंडवी

जिनके गीतों से हम प्रौढ़ शिक्षा के प्रशिक्षणों की शुरुआत करते थे
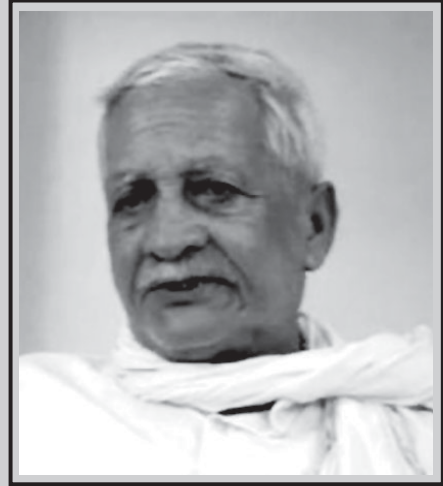
पिछले दिनों समाचार मिला कि अदम गोंडवी नहीं रहे। उनका निधन दिसम्बर,२०११ की १८ तारीख को हो गया था। इस बीच उनके बारे में बहुत कुछ छपता रहा । हम न मानकर भी यह मानते रहे कि वे नहीं रहे।

मन में स्मृतियां थीं। उन दिनों की स्मृतियां जब हम प्रौढ़ शिक्षा के हर प्रशिक्षण में उनकी गजलें अथवा उनके गीत गाते थे। बात १९७७-७८ की है। शुरू में तो उनकी कई गजलों को गाते हुए मन में ऐसा भ्रम भी बना रहा कि वे गजलें दुष्यंतजी की हैं, मगर यह खोजते देर नहीं लगी कि एक नौजवान कवि जिसका नाम अदम गोंडवी है अपनी आजाद कलम से दहकते हुए शब्दों में समाज की हकीकत बयां करने लगा है।

आदरणीय अदम जी उत्तर प्रदेश के गोंडा जिले के गांव आटा, परसपुर में २२ अक्टूबर, १९४७ को जन्मे थे। घर संपन्न था, मगर व्यवहार में संपन्नता उनको सुहाई नहीं थी।

सौ में सत्तर आदमी फिलहाल जब नाशाद हैं
दिल पर रखकर हाथ कहिए देश क्या आज़ाद है?
कोठियों से मुल्क के मयार को मत आंकिये
असली हिंदुस्तान तो फुटपाथ पर आबाद है।
- अदम गोंडवी
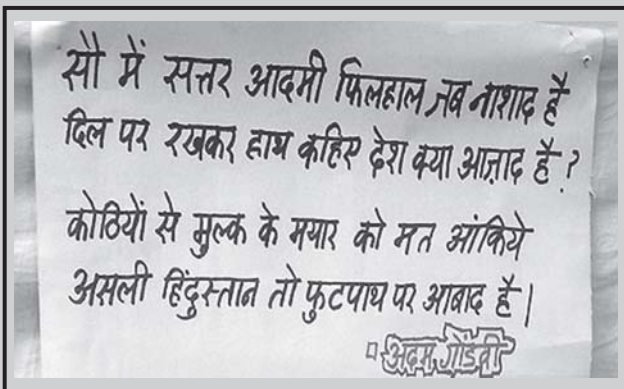
आंख खोलते ही और होश संभालते ही अपने गांव में गरीबी देखी थी। तभी वे लिख सके थे -

'फटे कपड़ों में तन ढांके गुजरता हो जहां कोई
समझ लेना वो पगडंडी अदम के गांव जाती है।'

उससे भी आगे और भी बड़ा सच उनकी गजल में गूंजा था-

'घर में ठंडे चूल्हे पर अगर खाली पतीली हो
बताओ कैसे लिख दूं धूप फागुन की नशीली है।'

वे इस गरीबी से निजात चाहते थे। तभी वे लिख सके थे-

'हिंदू या मुस्लिम के अहसास को मत छेड़िए
अपनी कुर्सी के लिए जज्बात को मत छेड़िए
छेड़िए इक जंग मिल-जुलकर गरीबी के खिलाफ
दोस्त मेरे मजहबी नग्मात को मत छेड़िए।'

आदरणीय अदमजी छोटे-बड़े सभी मित्रों को आदरणीय कहते थे। इसीलिये उनके उसी अंदाज में हम भी उनको आज सिर्फ आदरणीय कहना चाहते हैं।

अदमजी बहुत पढ़े-लिखे नहीं थे। शायद पांचवीं तक ही पढ़ पाये थे। मगर जो संवेदना और जो अल्फाज उनके पास थे उसका कोई मुकाबला नहीं। वे न केवल भारतीय समाज की गहरी समझ रखते थे बल्कि भारतीय राजनीति की चाल-ढाल को भी ठीक से समझ गये थे। उनकी प्रखर लोकोन्मुखी चेतना को आज हम नमन करते हैं।

अनौपचारिका के पाठकों के लिये अगले पन्नों पर प्रस्तुत है आदरणीय अदमजी की कुछ नायाब गजलें। ❑ **सं.**

एक

❑

हिन्दू या मुस्लिम के अहसासात को मत छेड़िये
अपनी कुर्सी के लिए जज्बात को मत छेड़िये

हममें कोई हूण, कोई शक, कोई मंगोल है
दफ्न है जो बात, अब उस बात को मत छेड़िये

गर गलतियां बाबर की थीं, जुम्मन का घर फिर क्यों जले
ऐसे नाजुक वक्त में हालात को मत छेड़िये

है कहां हिटलर, हलाकू, जार या चंगेज खां
मिट गये सब, कौम की औकात को मत छेड़िये

छेड़िये इक जंग, मिल-जुल कर गरीबी के खिलाफ
दोस्त, मेरे मजहबी नग्मात को मत छेड़िये । ❑

दो

❑

घर में ठंडे चूल्हे पर अगर खाली पतीली है
बताओ कैसे लिख दूं धूप फाल्गुन की नशीली है।

भटकती है हमारे गांव में गूंगी भिखारन-सी।
सुबह से फरवरी बीमार पत्नी से भी पीली है।

बगावत के कमल खिलते हैं दिल की सूखी दरिया में।
मैं जब भी देखता हूं आंख बच्चों की पनीली है।।

सुलगते जिस्म की गर्मी का फिर एहसास वो कैसे।
मोहब्बत की कहानी अब जली माचिस की तीली है।। ❑

तीन

❑

तुम्हारी
मगर ये

उधर ज
इधर पर

लगी है
ये गांधी

तुम्हारी
यहां जु

चार

❑

भूख के
या अदब

जो गजल
उसको

मुझको
पहले अ

खुद को
इस शह

न

हारी फाइलों में गांव का मौसम गुलाबी है
र ये आंकड़े झूठे हैं ये दावा किताबी है

र जम्हूरियत का ढोल पीटे जा रहे हैं वो
र परदे के पीछे बर्बरीयत है, नवाबी है

ी है होड़-सी देखो अमीरी औ गरीबी में
गांधीवाद के ढांचे की बुनियादी खराबी है

हारी मेज चांदी की, तुम्हारे जाम सोने के
ां जुम्मन के घर में आज भी फूटी रकाबी है । ❑

र

व के एहसास को शेरो-सुखन तक ले चलो
अदब को मुफलिसों की अंजुमन तक ले चलो

गजल माशूक के जल्वों से वाकिफ हो गयी
को अब बेवा के माथे की शिकन तक ले चलो

को नज्मो-जब्त की तालीम देना बाद में
ले अपनी रहबरी को आचरन तक ले चलो

इ को जख्मी कर रहे हैं गैर के धोखे में लोग
शहर को रोशनी के बांकपन तक ले चलो। ❑

पांच

❑

काजू भुने प्लेट में, व्हिसकी गिलास में
उतरा है रामराज विधायक निवास में

पक्के समाजवादी हैं, तस्कर हों या डकैत
इतना असर है खादी के उजले लिबास में

आजादी का वो जश्न मनाएं तो किस तरह
जो आ गये फुटपाथ पर घर की तलाश में

पैसे से आप चाहें तो सरकार गिरा दें
संसद बदल गयी है यहां की नखास में

जनता के पास एक ही चारा है बगावत
यह बात कह रहा हूं मैं होशो-हवास में। ❑

छह

❑

देखना सुनना व सच कहना जिन्हें भाता नहीं
कुर्सियों पर फिर वही बापू के बंदर आ गये

कल तलक जो हाशिये पर भी न आते थे नजर
आजकल बाजार में उनके कलेंडर आ गये,

बेचता यूं ही नहीं है आदमी ईमान को
भूख ले जाती है ऐसे मोड़ पर इंसान को

सब्र की इक हद भी होती है तवज्जो दीजिये
गर्म रक्खें कब तलक नारों से दस्तरखान को

शबनमी होठों की गर्मी दे न पाएगी सुकून
पेट के भूगोल में उलझे हुये इंसान को। ❑

देस की सुवास परदेस में

❑

शिशुपाल सिंह 'नारसरा'

भाई शिशुपाल शेखावाटी के एक ऐसे अध्यापक से हमारा परिचय करा रहे हैं जो अपनी प्रतिभा और मेहनत की सुवास परदेस में फैला रहे हैं। देस से उनका मोह छूटा नहीं है। वे जब भी अपने गांव आते हैं तब लोगों से बड़े चाव से मिलने के साथ-साथ वे आस-पास की स्कूल में जाकर पढ़ाना भी नहीं भूलते। शिशुपाल जी बताते हैं कि प्रोफेसर घासीराम का देस प्रेम और शिक्षा, साधना न केवल अनुपम है बल्कि अनुकरणीय भी। ❑ सं.

इस धरा पर अनेक लोग जन्म लेते हैं, चले जाते हैं और लोग उन्हें भूल जाते हैं किन्तु कुछ अपने उत्कृष्ट कर्मों के चरण चिह्न आस्था के शिलालेखों पर स्थायी रूप से अंकित कर देते हैं। ऐसे ही व्यक्तित्व के धनी हैं-स्वनाम धन्य धरती पुत्र डॉ. घासीराम वर्मा, जिन्होंने शिक्षा और समाजोत्थान के लिये अपने जीवन भर की कमाई समर्पित कर फकीरी का जीवन जिया है।

आपका जन्म १ अगस्त, १९२७ को चौधरी श्रीलादूराम जी के घर सीगड़ी (झुंझुनूं) में हुआ। समय की गति भी अद्भुत होती है। एक साधारण किसान परिवार में जन्म लेकर अमेरिका की विभिन्न यूनिवर्सिटीज में गणित पढ़ाना। कुछ विश्वास कम होता है न, किन्तु उनके जीवन संघर्ष की कहानी कुछ इसी तरह घटित होती है। घासीराम जी के पिताश्री लादूराम जी यद्यपि अनपढ़ थे, किन्तु जोड़, बाकी, गुणा, भाग उन्हें जुबानी याद थे। उनका गणित ज्ञान प्रखर था, जो उन्हें विरासत में मिला। प्रारंभिक शिक्षा वाहिदपुरा में गुरु मनीरामजी से ली। उस समय की गणित पढ़ाई में चालीस तक पहाड़े, सवा, डेढ़, ढाई, साढ़े तीन के पहाड़े व 'कनका'। कनका के माने १ से लेकर १०० तक की संख्या को क्रमश: उसी संख्या से गुणा करना। जैसे एक को एक से, दो को दो से, तीन को तीन से सड़सठ को सड़सठ से, ९९ को ९९ से गुणा करने का पहाड़ा। इन सबमें घासीराम पारंगत हुए।

'घीसा' नाम सुनकर महादेवी की संस्मरणात्मक कहानी 'घीसा' की याद आ जाती हैं महादेवी के 'घीसा' की तरह घासीराम ने भी अभावों में ही अध्ययन किया। पिलानी पढ़ने गये तो हेम सिंह राठौड़ की अनुशंसा पर शुकदेव पांडे ने अढ़ाई रुपये मासिक की छात्रवृत्ति स्वीकृत कर दी। उस समय छात्रावास का खर्चा तीन-चार रुपये आता था। बाकी सवा-डेढ़ रुपया घरवालों को देना पड़ता। उस समय सवा-डेढ़ रुपया बहुत बड़ी चीज होती थी। घरवाले बड़ी मुश्किल से दे पाते थे।

१९४२ में गांधीजी के 'करो या मरो' आह्वान पर घासीराम जी स्कूल छोड़ कर घर चले गये। घरवालों ने समझाया कि पढ़ना अच्छा है, किन्तु आप माने नहीं। अगस्त के बाद अगले मार्च-अप्रेल में उनका पिलानी जाना हुआ और वहां गुलाबदत्त जी अध्यापक से सम्पर्क हुआ। उन्होंने समझाया कि अंग्रेज विद्या और विज्ञान के कारण ही हमारे से आगे हैं। अगर कुछ करना चाहते हो तो विद्या पढ़ो। घासीराम को उनकी बात जंच गई और उन्होंने घर जाकर कहा कि मैं पुन: जुलाई में पढ़ने जाऊंगा। वहां भी छात्रवृत्ति मिलती रही। किन्तु नौवीं दसवीं पास करने के बाद घरवालों की अपेक्षा नौकरी करवाने की थी क्योंकि आर्थिक तंगी थी और उस जमाने में नौवीं-दसवीं पढ़े लिखे की नौकरी लग जाती थी।

इसी समय आपने प्रेमचन्द के उपन्यास 'कर्मभूमि' एवं 'गोदान' का अध्ययन किया। 'गांधीजी की जीवनी' एवं 'नरमेघ' भी पढ़ा। इन ग्रंथों के अध्ययन से इनको बड़ी प्रेरणा मिली और इच्छा रही कि भले ही कॉलेज में डिग्री नहीं ले सकूं किन्तु एक बार प्रवेश तो लूंगा ही। घरवालों की इच्छा तो नहीं थी किन्तु कॉलेज में पांच रुपये की छात्रवृत्ति मिलने लगी। फिर भी होस्टल में मैस के हिसाब का भुगतान नहीं कर पाये तो तीन साथी विद्यार्थियों ने मिलकर पैसा जमा करवाया। अपने सहपाठी की सलाह पर आपने सहायता के लिए राजस्थान-सरकार को प्रार्थना-पत्र दिया। विश्वास तो नहीं था किन्तु २०० रुपये का चैक मिल गया और आपने तीनों साथियों का पैसा लौटा दिया।

बाद में नौकरी की तलाश में बगड़ गये। बाजरे की रोटी का चूरमा बनाकर साथ ले गये। वहां बी.एल. हाई स्कूल में गणित अध्यापक के रूप में १०० रुपये मासिक की नौकरी मिल गयी। यहां १५-२० रुपये खर्च होते शेष रुपये घरवालों को भेज देते। वहां आपने ट्यूशन भी किया और आय को डाकघर में जमा करवाते रहे। वहीं स्नातकोत्तर की डिग्री लेने का मानस बना ताकि कहीं किसी कॉलेज में नौकरी मिल जाये। शुभचिंतकों की सलाह पर बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में प्रवेश ले लिया। आर्थिक तंगी के चलते वहां एम.पी. बिड़ला ने १०० रुपये भिजवाये, जो घासीरामजी के बड़े काम आये। वहां प्राइवेट मैस में खाना खाते। पास में जो पैसा था उससे महाराज की एक-दो बार मदद कर दी, जिससे वे आपको पैसे वाला समझने लगे, जबकि असल में आप आर्थिक अभावों से जूझते रहे और संयोग से जरूरत के अनुसार मददगार भी मिलते रहे। कुछ लोगों ने यह भी कहा कि तुम्हारे पास पैसे नहीं थे तो बनारस पढ़ने की क्या जरूरत थी ? आप बड़ी विनम्रता से कहते- 'साहब, मेरे से गलती हो गयी, अब कभी ऐसी गलती नहीं करूंगा।'

अभाव के समय जिन लोगों ने मदद की आप उनका बड़ा अहसान मानते हैं। आप कहते हैं- 'उस समय के ३० रुपये की कीमत आज के ३० लाख से भी कहीं ज्यादा है। जब आप प्यासे हों तो एक लौटा पानी से जो राहत मिलती है वह प्यासा न होने पर पानी के बड़े-बड़े हौज भरे हों, उनसे भी नहीं मिलती।' जिन लोगों ने समय-समय पर आपकी आर्थिक मदद की उन सबका जिक्र आपने आदर और विनम्रता से अपनी आत्मकथा 'अतीत की झलक' में किया है।

बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से डिग्री लेकर आप पुन: बगड़ में अध्यापक हो गये। अब सौ रुपये की जगह १२० रुपये प्रतिमाह मिलने लगे। मन में विचार था नौकरी में कुछ तरक्की हो। पिलानी में प्रोफेसर दूलसिंह ने गणित के प्रोफेसर के यहां रिसर्च के लिए भिजवाया। वही आर्थिक संकट। फिर ७५ रुपये की छात्रवृत्ति स्वीकृत हुई और बगड़ को अलविदा कहा। बगड़ से आप पिलानी पहुंच गये। अब भी जीवन संकट से घिरा था। संकट यह था कि जी.डी. बिड़ला ने अनुदान में कमी कर दी और उसका परिणाम घासीराम को २५ रुपये माहवारी ही मिलते। ट्यूटोरियल क्लासेज लेनी पड़ती। गणित जैसा कठिन विषय और विद्यार्थियों द्वारा जानबूझकर शिक्षक की परीक्षा लेने के लिये कठिन सवाल पूछना। ऐसे में पूरी तैयारी के साथ क्लास में जाना पड़ता और रिसर्च के कार्य को समय नहीं दे पाते।

उसी समय एक सिक्ख विद्यार्थी दलजीत सिंह आपके सम्पर्क में आया। वह काफी संपन्न परिवार से था। उसने ट्यूशन पढ़ाने के लिये निवेदन किया तथा स्वयं ने ही ५० रुपये माहवारी देने का प्रस्ताव रखा, जिसे घासीराम ने स्वीकार कर लिया। कुछ गणित की दुर्लभ पुस्तकें भी दलजीत ने

उपलब्ध करवाई, जिससे घासीराम को पढ़ाने में सुविधा हो गयी और वे रिसर्च के लिये पर्याप्त समय निकाल पाये। इनके मार्गदर्शक प्रोफेसर डॉ. विभूतिभूषण सेन ने सलाह दी कि प्रिंसिपल नीलकांतन कॉलेज छोड़ने वाले हैं, आप उनसे मिलकर छात्रवृत्ति २५ रुपये से बढ़ाकर ७५ रुपये करने का निवेदन करें। घासीरामजी के निवेदन को प्रिंसिपल ने तत्काल स्वीकार कर लिया। इस प्रकार उन्हें कॉलेज से १२५ रुपये मिलने लगे तथा आपने एक और ट्यूशन ५० रुपये का कर लिया। इस तरह कुल २२५ रुपये मिलने लगे।

इस बीच प्रोफेसर सेन पिलानी छोड़कर जादवपुर विश्वविद्यालय कोलकाता चले गये। आपने नये प्राचार्य श्री मित्रा से इजाजत लेकर प्रोफेसर सेन के निर्देशन में थीसिस तैयार करते रहे और १९५७ में पीएच.डी. की डिग्री मिल गयी। मित्रा साहब ने केन्द्र सरकार से २०० रुपये की छात्रवृत्ति भी स्वीकृत करवा दी।

जनवरी, १९५८ में इंडियन साइंस कांग्रेस के कोलकाता सम्मेलन में आपकी भी भागीदारी रही और वहां अमेरिका के कुरांट इंस्टीट्यूट ऑफ मैथेमेटिकल साइंसेज के प्रो. के.आर. फ्रीड्रिक्स से मुलाकात हुई। उन्होंने डॉ. घासीराम वर्मा को न्यूयॉर्क आने का निमंत्रण दिया। डॉ. वर्मा ने स्पष्ट बताया कि उनके पास अमेरिका आने के लिये एक पैसा भी नहीं है, तो उन्होंने कहा-'डांट वरी अबाउट दैट, एवरी थिंग विल बी टेकन केयर ऑफ।' आपने पोस्ट डॉक्टरल फैलोशिप के लिये आवेदन किया और ४०० डॉलर प्रतिमाह पर बुलावा आ गया। किन्तु हवाई यात्रा खर्च और पहनने के ठीक-ठाक कपड़ों का इंतजाम अब भी बाकी था। बिड़ला एज्यूकेशन ट्रस्ट ने २००० रुपये की मदद कर दी। यात्रा किराया ३००० रुपये के आसपास था और ५०० रुपये कपड़ों के लिये भी आवश्यक थे। ५०० रुपये का मनीऑर्डर आपके पूर्व विद्यार्थी विजयकुमार अकूड़िया ने मुम्बई से भिजवा दिया। १००० रुपये रामनिवास जी मिर्धा से मिल गये।

डॉ. घासीराम अमेरिका पहुंच गये, वहां प्रो. फ्रीड्रिक्स ने बहुत से लोगों से जान-पहचान करवायी। अमेरिका में रहने-खाने की सस्ती व्यवस्था ढूंढने में थोड़ा समय लगा। खाना स्वयं हाथ से बनाते। इस बीच ७०० डॉलर माहवारी में फार्दम विश्व-विद्यालय में काम मिल गया। डॉ. घासीराम के शिक्षण की विद्यार्थियों एवं फिजिक्स विभाग के चेयरमैन ने प्रशंसा की। विद्यार्थियों ने उन्हें गिफ्ट भी दी। वहां विद्यार्थी उसी शिक्षक को गिफ्ट देते हैं, जिनको वे पसंद करते हैं।

फार्दम विश्वविद्यालय में शिक्षण एवं कुरांट संस्था में रिसर्च साथ-साथ चलता रहा। तीन साल अमेरिका में पढ़ाने के बाद आप जहाज से यूरोप भ्रमण एवं स्वदेश के लिये रवाना हुए, क्योंकि आपके पास एक हजार पौंड के करीब सामान का वजन हो गया था ऐसे में हवाई यात्रा बहुत महंगी हो जाती।

स्वदेश लौटकर पिलानी में पुन: पढ़ाना शुरू कर दिया। पांच-सात रोज बाद ही यूनिवर्सिटी ऑफ रोडे आइलैण्ड, किंग्स्टन के चेयरमैन का पत्र मिला जिसमें एसोसियेट प्रोफेसर पद पर ग्यारह हजार डॉलर वार्षिक का प्रस्ताव था। आपने पिलानी से दो वर्ष की छुट्टी चाही किन्तु दो वर्ष की छुट्टी स्वीकृत नहीं हुई । वे अपनी पत्नी एवं तीनों लड़कों को भी साथ ले जाना चाहते थे। पूरे परिवार के न्यूयार्क पहुंचने के किराये की समस्या फिर आन पड़ी। किन्तु एयर फ्रांस के ट्रेवल यू.एस.जैन आपके घर आये और आग्रह किया कि आप हमारे एयर लाइन से यात्रा कीजिये और भुगतान अमेरिका पहुंचने पर डॉलर में कर दीजियेगा। इस तरह से आपकी समस्या का समाधान हो गया। वहां साल भर यूनिवर्सिटी ऑफ रोडे आइलैण्ड, किंग्स्टन में पढ़ाने के बाद जून, जुलाई, अगस्त, १९६५ में आपने नेशनल एरोनेटिक्स एंड स्पेस एडमिनिस्ट्रेशन (नासा) में कन्सलटेंट का काम किया। वहां जिन विषयों में रिसर्च की वह इंजीनियरिंग व फिजिक्स से संबंधित थी।

यह एक जुझारू, संघर्षशील जिजीविषा वाले प्रोफेसर की कहानी है, जिसने जीवन की जंग को इच्छा-शक्ति और आत्मबल से न केवल जीता है बल्कि हजारों लोगों को संबल देते हैं, रास्ता दिखाते हैं
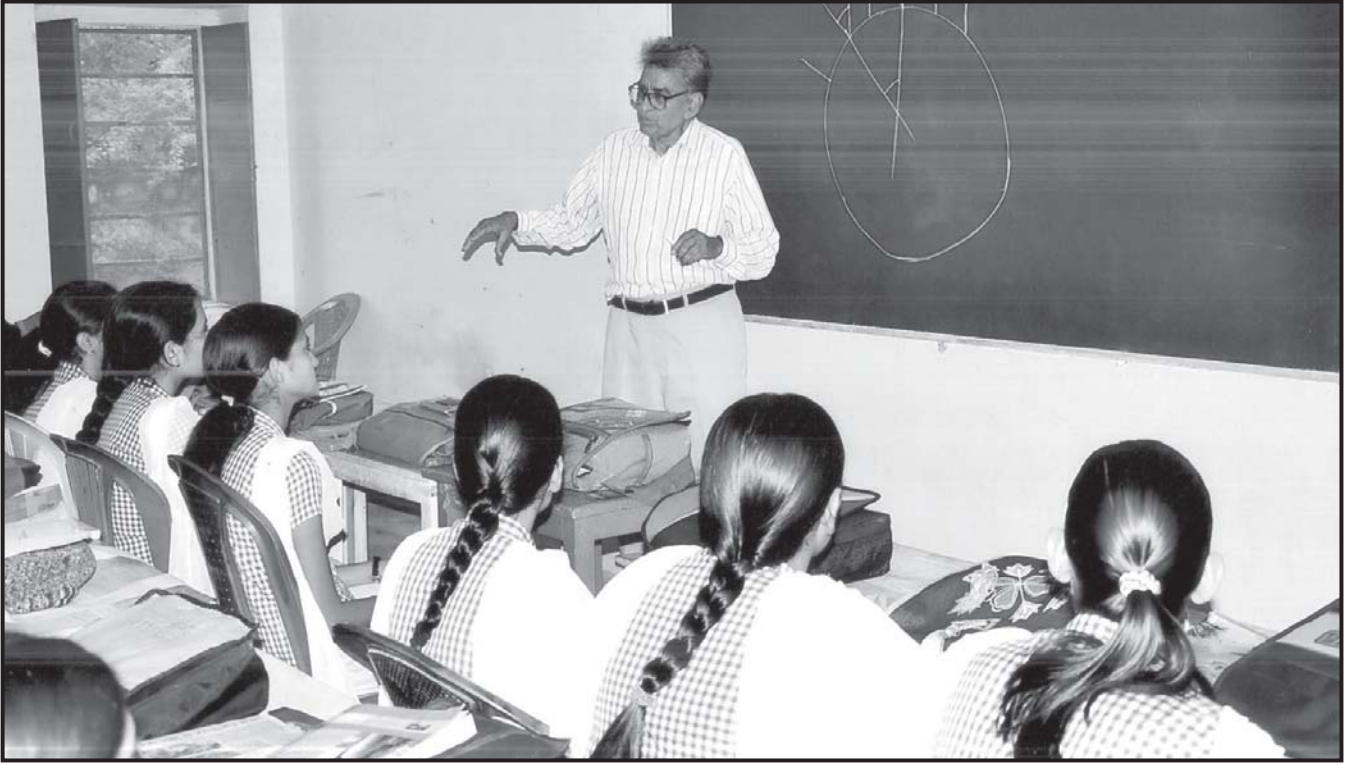
और ज्ञान के आलोक से जगमग कर देते हैं। लोगों की पहाड़ सी पीड़ा को सहानुभूति और सहयोग की मरहम लगाकर चिंता मुक्त कर देते हैं और यह सिद्ध कर देते हैं कि शिक्षा मनुष्य को महान बनाती है, यह जीवन में उजियारा लाती है।

प्राय: पद और पैसे का मद व्यक्ति में अहंकार पैदा करता है, समाज से विलग कर देता है किन्तु महान वह होता है जो इन्हें पाकर और ज्यादा विनम्र हो जाता है, झुक जाता है। प्रोफेसर डॉ. घासीराम वर्मा यह अच्छे से जानते हैं कि धन की तीन ही गति होनी हैं-दान, भोग और नाश। सर्वोत्तम गति दान है, समाज हित में सदुपयोग है आप यह भलीभांति जानते हैं, इसलिये तो आपने अब तक राजस्थान में सैकड़ों बालिका छात्रावासों का निर्माण, विभिन्न शिक्षण संस्थाओं में मुक्त हस्त से सहयोग किया है। साहित्यकारों, कलाकारों, पत्रकारों की यथा सम्भव मदद करते रहते हैं। पुस्तक प्रकाशन आदि में भरपूर सहयोग देते हैं। जरूरतमंद को हारी-बीमारी में सहायता करना, तलाकशुदा महिलाओं को घर बनाकर देना आपके स्वभाव का अंग है। अभावग्रस्त क्षेत्रों में टैंकरों से पानी पहुंचाना, प्रतिभावान विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति देना और दीन-हीन की मदद को आप ईश्वर की सेवा मानकर करते हैं। डॉ. घासीराम वर्मा समाज सेवा समिति अनवरत रूप से इस दिशा में सक्रिय है। अब तक लगभग छ: करोड़ रुपये का दान कर चुके हैं इसीलिये तो आपको लोग करोड़पति फकीर कहते हैं। इतना सब करने के बाद भी विनम्र इतने कि पात्र को अहसास ही नहीं होने देते कि मैंने आप पर कोई उपकार किया है। रहीम की ये पंक्तियां आप पर शत-प्रतिशत लागू होती हैं -

देनहार कोई और है,
भेजत है दिन रैन।
लोग भ्रम मुझ पर करें,
ताते नीचे नैन।।

विदेश जाने वाले प्राय: घर-परिवार को भूल जाते हैं, भूल जाते हैं माता-पिता को और कुछ को तो प्राय: देश से भी वास्ता नहीं रहता। किन्तु डॉ. घासीराम वर्मा अपने मां-बाप को नहीं भूले, घर परिवार को नहीं भूले, देश को नहीं भूले और न ही बचपन की गरीबी और संगी-साथियों को। किसानों की दीन-हीन दशा और शिक्षा से दूरी आपके मन को सालती रहती है। दिल में बड़ी तड़फ है-काश। गरीबों की बेटियां भी पढ़ पातीं।

लगभग २०-२२ वर्ष पूर्व आप सेवा निवृत्त हो गये किन्तु सेवा में रहते हुए आप जुलाई से नवम्बर तक प्राय: प्रतिवर्ष जन्म भूमि की सेवा के लिये आते और अपनी गाढ़ी कमाई जरूरतमंद को बांट कर चले जाते। यह क्रम आज भी यथावत जारी है। ८४ बसंत देख चुके डॉ. वर्मा ऊर्जा से लबरेज है। ईश्वर इन्हें सुस्वास्थ्य, दीर्घायु, भरपूर कमाई एवं सेवा का संकल्प दें ताकि आपका सेवा-संकल्प का मिशन फलीभूत होता रहे। ऐसे महामानव को मैं हृदय के अतल से नमन करता हूं। ❑

पापुलर ऑफसेट प्रिंटर्स, रोडवेज बस स्टेंड,
फतेहपुर (सीकर) मो. ०९४६१५३८५९१

समीक्षा

जूलिया वेबर की डायरी में बोलते शिक्षानुभव

कालूराम शर्मा

मेरी ग्रामीण शाला की डायरी अंग्रेजी में लिखी गयी 'माई कंट्री स्कूल डायरी' का हिन्दी अनुवाद है। इसकी लेखिका हैं जूलिया वेबर गॉर्डन । यह डायरी खासकर ग्रामीण क्षेत्रों की स्कूलों में काम करने वाले, शिक्षकों उनसे जुड़े प्रशिक्षकों और योजनाकारों तथा स्वैच्छिक संस्थाओं के कार्यकर्ताओं को एक दृष्टि देती है। स्कूली शिक्षा को बालकों के जीवन से जोड़ने की चाहत रखने वाले शिक्षकों की शिक्षाकर्मियों की यह किताब हमसफर बन सकती है। दरअसल जूलिया वेबर ने यह किताब सन् १९३० में लिखी थी जिसका प्रकाशन कोई सोलह बरस के बाद संभव हो सका। एकलव्य के लिये इस किताब का हिन्दी अनुवाद किया है पूर्वा याज्ञिक कुशवाहा ने जिन्हें शैक्षिक किताबों के अनुवाद का लंबा अनुभव है।

वैसे आज भी हमारे देश में एकल-शिक्षक स्कूलों की कमी नहीं हैं। मुख्य धारा के ऐसे स्कूल ग्रामीण क्षेत्रों में मिल जायेंगे जहां एक ही शिक्षक को समस्त कक्षाओं का प्रबन्धन और शिक्षण करना होता है। ऐसे में यह किताब भारत जैसे विकासशील देश के स्कूली तंत्र में व्याप्त नाउम्मीदी के बादलों में आशा की किरण जगाती है। दरअसल जूलिया वेबर गार्डन द्वारा प्रारंभ की गई स्टोनी ग्रोव नामक एक गांव की ग्रामीण शाला एक कमरे वाली, गरीब समुदाय में स्थित थी और उन बच्चों के लिये थी जो कई तरह की अक्षमताओं से ग्रसित थे। मिस वेबर के पास उस स्कूल में आठ कक्षाएं होते हुए भी उन्होंने कई तरह के प्रयोग किये और कई नयी तकनीकें अपनाकर न केवल स्कूल को बदल डाला बल्कि अपने भीतर भी परिवर्तन किये।

जूलिया वेबर की इस डायरी के लिए जाने-माने शिक्षाशास्त्री जॉन होल्ट ने प्रस्तावना में शिक्षा के मकसदों पर व्यापक नजरिया प्रस्तुत किया है। होल्ट प्रस्तावना में लिखते हैं कि बच्चे अच्छी तरह से तब सीखते हैं जब उनका स्कूल उनके समुदाय का हिस्सा हो। जब उनका समुदाय स्कूल में आता हो, जब उनका सीखना स्कूल भवन के बाहर के लोगों के जीवन, उनके कामों, उनकी जरूरतों और उनकी समस्याओं के कई बिन्दुओं को स्पर्श करता हो। यही वजह है कि जूलिया अपने बच्चों को समुदाय से सीखने और अध्ययन करने के लिये काफी सारी गतिविधियों को अंजाम देती हैं। दरअसल समुदाय और शाला के जुड़ाव पर जॉन ड्यूई ने काफी विस्तार से लिखा है। इस लिहाज से देखें तो जूलिया ने अपने छोटे से स्कूल में उन सभी शैक्षिक विचारों और सिद्धांतों को जगह दी जो बच्चों को सीखने-सिखाने के अवसर देते हैं।

जूलिया वेबर बच्चों को शिक्षा देने के दौरान पाठ्यपुस्तकों में नहीं उलझी रहीं बल्कि वे सीखने की विस्तृत सीमाओं को तलाशती रहीं। उन्होंने बच्चों को इस बात के लिये प्रेरित किया कि ये दुनिया कैसे चलती है, पर आधारित सवाल सोचें और उनके जवाब खोजने का प्रयास करें। दरअसल तभी तो जीवन केन्द्रित शिक्षा होगी। जूलिया वेबर के पास बच्चों के बारे में, समाज के बारे में उनकी एक फर्क और स्पष्ट समझ है। वे बच्चों में वजूद और क्षमता को देख पाती हैं। जूलिया ने जो सोचा वह किया भी। जूलिया इस स्कूल के चार साल के सफर में बच्चों को समझने में काफी सारा समय बिताती हैं कि उनकी आवश्यकताएं क्या हैं ?

जूलिया वेबर अपनी डायरी में बच्चों के साथ किये गये कामों के निष्कर्ष नहीं लिखती। वह तो बस रोजाना जो भी बच्चों

के साथ कार्य करती हैं और बच्चे जो भी करते उसका ब्यौरा सटीक तरीके से प्रस्तुत करती चलती हैं। बेशक, जो डायरी जूलिया ने लिखी थी जैसा कि होल्ट की प्रस्तावना से पता चलता है कि यह एक बड़ा पुलिंदा था जिसे काफी संपादित करके उसके मर्म को इस डायरी के रूप में एक-चौथाई भाग में प्रस्तुत किया गया है। वे कहती हैं कि इस किताब में बच्चों की समझ को समझने और उनके सीखने-सिखाने को लेकर कुछ संकेत ही किये हैं। हरेक शिक्षक को इससे कुछ और ज्यादा ही करना चाहिये। और असल में जूलिया ने भी ऐसा ही कुछ किया।

जूलिया अपनी डायरी बड़े सरल ढंग से लिखती हैं। वे पन्ने के एक ओर तारीख और दिन का नाम लिखती हैं और अपने मूल विषय पर आ जाती हैं। जो भी वे बच्चों के साथ करती हैं, उनके लिये योजना बनाती हैं, इतना ही नहीं वे अगर किसी से मिलती हैं तो उसको भी अपनी डायरी में लिख लेती हैं। उल्लेखनीय है कि जूलिया ने उस स्कूल में चार सालों तक काम किया और उसका ब्यौरा दिया। पहले साल में वे बच्चों को समझने की बात करती हैं साथ ही इस दिशा में क्या प्रगति की और किन-किन बाधाओं और पीड़ाओं को झेला इसका ब्यौरा मिलता है। दूसरे वर्ष में विषयगत और अन्य कामों की एक शुरुआत होती है। इस दौरान वे अपने समुदाय के अध्ययन पर काफी जोर देती है। तीसरे वर्ष में वे अपने दर्शन और कुछ तकनीकों को लागू करती हैं। चौथे वर्ष में वे बच्चों को लोकतंत्र में रहने के काबिल बनाती हैं।

दरअसल डायरी में वह सब कुछ दिखता है जो बाल केन्द्रित हो। एक महत्त्वपूर्ण बात यह कि जूलिया बच्चों के साथ वह सब कुछ करती हैं जो उनकी दृष्टि से उचित हो। जूलिया अपने काम के दौरान बहुत बारीक बातों को पकड़ने की कोशिश

जूलिया वेबर की इस डायरी के लिए जाने-माने शिक्षाशास्त्री जॉन होल्ट ने प्रस्तावना में शिक्षा के मकसदों पर व्यापक नजरिया प्रस्तुत किया है। होल्ट प्रस्तावना में लिखते हैं कि बच्चे अच्छी तरह से तब सीखते हैं जब उनका स्कूल उनके समुदाय का हिस्सा हो। जब उनका समुदाय स्कूल में आता हो, जब उनका सीखना स्कूल भवन के बाहर के लोगों के जीवन, उनके कामों, उनकी जरूरतों और उनकी समस्याओं के कई बिन्दुओं को स्पर्श करता हो।

करती हैं। और सबमें अहम बात यह कि उन बातों को डायरी में बड़ी खूबसूरत ढंग से लिख पाती हैं। जूलिया बच्चों के साथ कड़े रूप से भी पेश आती है जब वे किसी काम को लापरवाही से करते हैं। देखिये मिसाल... आज मैंने रूथ की कापियां सावधानी से देखीं। ज्यादातर काम लापरवाही से किया हुआ था। अगले एक माह तक रूथ अपने लिखे हुये को फिर से पढ़ेगी। और अगर गलतियां नजर आयें तो उन्हें सुधारेगी। इससे पहले वह काम खत्म हो गया है, उसे नहीं मान लेगी।

जूलिया की डायरी को पढ़ने पर लगता है कि बच्चों के साथ रहना और सीखने-सिखाने का काम हमेशा ताजगी नहीं देता। न ही हमेशा खुशियां देता है। इस रास्ते पर चलते हुए निराशाएं मिलती हैं। मगर निराशाओं में से ही आशाएं प्रकट होती हैं। वे अपनी डायरी में लिखती हैं कि वे बच्चों से उकता जाती हैं। वे एक शिक्षिका होने के नाते अपनी कमजोरियों को भी नहीं छुपातीं। वे लिखती हैं ... बच्चों को बतियाते सुनती रही और मुझे बड़ी शिददृत से उनकी जरूरतों का अहसास होने लगा और उतनी ही शिददृत के साथ अपनी कमियों की चेतना भी जगी। ... पर मैं इतना कम जानती हूं। ... इतना थक गयी होती हूं कि जिन बातों की विस्तृत योजना बनानी होती है उनके बारे में सोच भी नहीं पाती।

जाहिर है कि बच्चे तो बच्चे ठहरे। बच्चों की संभाल करना और उन्हें बिना सजा और दंड दिये बगैर उनकी अपनी मर्जी से सीखने के अवसर उपलब्ध कराना कोई आसान काम तो नहीं। बच्चों के बीच आपस में भी बहुत कुछ ऐसा चल रहा होता है जो किसी एक बच्चे को इंसानियत के तौर पर पीड़ा पहुंचाता हो। एक ऐसा भी उदाहरण देखिये-वॉरेन आज सुबह से ही दु:खी था। किसी ने उसे छोकरी कहा और वह ऐसे

रोया मानो उसका दिल टूट गया हो। मैंने उससे अलग से बात की और कहा कि अगर उसकी प्रतिक्रिया यही रही तो लड़के उसे छेड़ती ही रहेंगे। उसने कहा कि वह कोशिश करेगा कि वह न रोए, पर उसे लगता है कि कोई भी उसे पसंद नहीं करता...। आज पहली बार वॉरेन ने अपना काम पूरा किया और दोपहर को वह किसी वास्तविक लड़के की तरह खेला।

जूलिया की एक और खूबी है कि वह अपने आपको बच्चों के बीच रहते हुए ज्ञान और शक्ति के मामले में संपूर्ण नहीं मानती। वे कहती हैं कि हरेक में कुछ न कुछ क्षमताएं होती हैं। इस लिहाज से सभी बच्चों को वे एक इंसान मानती हैं और उनमें क्षमताओं को तलाशती रहती हैं। इस मामले में डार्विन ने एक अहम बात कही है कि कोई भी व्यक्ति संपूर्ण नहीं है। डार्विन ने पूरे जीव जगत को लेकर यह बात कही है। मगर हम इंसानों के संदर्भ में देखें तो पाते हैं कि हरेक में कुछ न कुछ खास होता है।

स्कूल में बच्चों को कई सारे कामों की जिम्मेदारियां दी गयी हैं। और जूलिया यह समझती है कि बच्चे कई सारे कामों में निपुण हैं। कई मामलों में बच्चे जूलिया को पीछे छोड़ देते हैं। जूलिया अपनी डायरी में लिखती हैं- आज ठंड इतनी ज्यादा थी कि आग जलानी पड़ी। फ्रेंक ने दिन भर अलाव का ध्यान रखा। वह जिम्मेदार है और अलाव के बारे में मुझसे कहीं अधिक जानता है। वह कमरे का तापमान नियंत्रित करने के लिये खिड़कियां भी उठाता-गिराता रहा ताकि हवा कम या ज्यादा आये।'

स्टोनी ग्रोव स्कूल जो एक पहाड़ी इलाके की एकल-शिक्षक शाला थी जिसमें जूलिया वेबर एकमात्र शिक्षिका थी। जूलिया अपनी डायरी के प्रस्तावना में कुबूल करती हैं कि दरअसल वह एक लेखिका नहीं है। उनका मकसद डायरी लिखने के पीछे यह

जूलिया की एक और खूबी है कि वह अपने आपको बच्चों के बीच रहते हुए ज्ञान और शक्ति के मामले में संपूर्ण नहीं मानती। वे कहती हैं कि हरेक में कुछ न कुछ क्षमताएं होती हैं। इस लिहाज से सभी बच्चों को वे एक इंसान मानती हैं और उनमें क्षमताओं को तलाशती रहती हैं। इस मामले में डार्विन ने एक अहम बात कही है कि कोई भी व्यक्ति संपूर्ण नहीं है। डार्विन ने पूरे जीव जगत को लेकर यह बात कही है। मगर हम इंसानों के संदर्भ में देखें तो पाते हैं कि हरेक में कुछ न कुछ खास होता है।

था कि वे एक बढ़िया टीचर बनें क्योंकि जो कुछ घट रहा है उसे लिखने पर उनका चिंतन और अधिक मंजा हुआ होगा। जूलिया डायरी के प्रकाशन के बारे में कहती हैं-मैं यह कथा उन तमाम कथाओं में जोड़ना चाहती हूं ताकि पलड़ा ऐसी शिक्षा की ओर झुके जो लोगों के जीवन में कुछ अंतर लाती हो। जूलिया का इस डायरी में यह विश्वास भी साफ तौर पर झलकता है कि शिक्षा जीवन की गुणवत्ता में खासा सुधार कर सकती है।

ऐसा बहुत कम होता है कि स्कूल छोड़ने वाले बच्चों का रेकार्ड स्कूल या शिक्षक रखें। मगर इस मामले में जूलिया बच्चों का खासा ख्याल रखती हैं। यह सवाल उठना तो लाजिमी है कि बच्चों के द्वारा स्कूल छोड़ने के बाद उनका क्या हुआ जिनके साथ जूलिया वेबर ने चार साल बिताए ? कुछ ने आगे की पढ़ाई जारी रखी और कुछेक अपनी उच्च कक्षाओं की पढ़ाई इसलिये जारी नहीं रख पाये कि उनके घर वाले नहीं चाहते थे। जूलिया उन बच्चों का पूरा रेकार्ड रखती हैं और उनके बारे में बड़ी विनम्रता से लिखती हैं। आखिर वे बच्चे अपने समुदाय से सीखते हैं और समुदाय के हिस्से बन जाते हैं। मगर ये बच्चे बड़े होकर अपनी-अपनी दिलचस्पी के काम खोज लेते हैं। वे अपने घरों में हर तरह से मदद करते हैं। वे समाज को चलाने वाली गतिविधियों में जुड़ जाते हैं।

इस किताब को एक दूसरे नजरिये से भी देखना चाहिये। दरअसल हमारे स्कूली तंत्र में शिक्षकों से यह मांग तो बेतहाशा की जाती है कि वे डायरी लिखें। मगर डायरी लिखने की यह परंपरा लचर और उबाऊ होती है। ऐसा इसलिये क्योंकि डायरी लेखन एक यांत्रिकी प्रक्रिया बनकर रह गयी है। शिक्षक अपनी डायरी में महज खाना-पूर्ति करते हैं जो किसी भी प्रकार का न तो उनके संस्थान को और न ही स्वयं को आइने दिखाने जैसी प्रतिक्रिया नहीं देती। इस लिहाज से यह'डायरी' बच्चों के साथ सीखने-सिखाने के काम में लगे शिक्षकों को डायरी लिखने का एक विचार देती है।❑

द्वारा-अजीम प्रेमजी फाउंडेशन
२६ त्र, बलबीर रोड, देहरादून
मो.०९४५६५६१३४७

रवीन्द्र जयंती

जन-जन का सरोकार

❑
मंजुरानी सिंह

हर वर्ष की तरह रवीन्द्र जयंती ८ मई को आ गयी। बंगाल के लोग रवीन्द्रनाथ को बहुत प्यार करते हैं, आस्था और पूजा भी। इकलौता कवि है यह, जिसे बौद्धिक वर्ग जितना महत्त्व देता है, जितना बड़ा मानता है उतना ही जन मानस भी।

आठ मई मंगलवार की प्रात: रवीन्द्रनाथ के गीत के आधार पर विश्वभारती में हर बार की तरह वैतालिक (जागरण गीत, उद्‌बोधन संगीत जो कहें) आरंभ हुई। जिसमें छात्र-छात्राएं, रजिस्ट्रार, वाइस चांसलर सभी ने पंक्तिबद्ध होकर गीत गाते हुए आश्रम की परिक्रमा की, उसके बाद आठ बजे से रवीन्द्र जयंती का विशेष आयोजन शुरू हुआ। रवीन्द्र संगीत का कार्यक्रम स्कूल के बच्चों द्वारा, पुन: बैशाख की एक कविता का हिन्दी, उड़िया, उर्दू, जापानी, संताली, रसियन आदि कई भाषाओं में अनुवाद प्रस्तुत किया गया। श्रोतावर्ग में आस-पास के ग्रामीण और उनके बच्चे भी बौद्धिक वर्ग के साथ शामिल थे। सबको मिठाई का पैकेट विश्वभारती की ओर से दिया गया।

शांति निकेतन के कार्यक्रम के बाद श्री निकेतन में भी रवीन्द्र जयंती मनाई गई। रात में शांति निकेतन में रवीन्द्रकृत नाटक का आयोजन हुआ। इस तरह हर बार की तरह शांति निकेतन में रवीन्द्र जयंती का कार्यक्रम संपन्न हुआ।

वस्तुत: इस तरह की प्रस्तुति में अब कोई नवीनता दिखाई नहीं पड़ती इसलिए श्रोतावर्ग में बहुत सारे आश्रमवासी शामिल ही नहीं होते। इस संदर्भ में मेरे लिये भी जो कार्यक्रम महत्त्वपूर्ण रहा वह है श्रीमती महिला समिति, सीमान्त पल्ली द्वारा आयोजित रवीन्द्र जयंती। इस कार्यक्रम में मोहल्ले की घरेलू महिलाओं ने पन्द्रह दिनों के रिहर्सल के बाद नौ मई को एक घर में जमा होकर रवीन्द्र जयंती मनायी।

इनके गाये गीतों में प्रसिद्ध रवीन्द्र संगीत 'ओई महामानव आसे, दिके दिके रोमांच लागे' सबने गाया, बाकी गीतों में कइयों ने अकेले अपने भूले हुए अभ्यास के बावजूद पूरे आह्लाद के साथ रवीन्द्र

संगीत, रवीन्द्र पाठ, रवीन्द्र आकृति प्रस्तुत किया।

इस पूरे आयोजन का प्रतिनिधित्व सत्तर वर्षीया श्यामली दरिपा ने किया। स्व. सुधीर चन्द्रकर जिन्होंने रवीन्द्र संगीत की कई स्वरलिपियां बनायी हैं, उनकी बेटी शुभ्रा डे ने बहुत प्यारा गीत गाया-

तोमरि नाम बलब नाना छलनाय
बलब एका बसे आपन मनेर छायातले
शिशु जेमन माके नामेर नेशाय डाके
बलते पारे एइ सुखे तेइ मायेर नाम से बले।

अर्थात तुम्हारा नाम ही पुकारूंगा, मनमाने ढंग से, अकेले बैठकर, अपने भावों की छाया में बैठकर। शिशु जिस तरह मां के नाम की नशा में बार-बार उसे पुकारता रहता है वैसे ही पुकारूंगा तुम्हारा नाम, सुख-दुख, हर्ष-विषाद-जब-तब, बस पुकारूंगा।

इसी कार्यक्रम में एक गीत का मूल और हिन्दी अनुवाद भी प्रस्तुत हुआ।

निबिड़ घन आंधारे जले देह ध्रुवतारा
मन रे मोर पाथारे होस ने दिसेहारा...

निबिड़ घन तिमिर में जलता है ध्रुवतारा
मन के मेरे पथ में ना दिक्‌हारा।
विषाद में हो मृयमान
बंद न करना गान
सफल करो यह प्राण
छोड़े मोहकारा ....
रखना इस जीवन को
रखना चिर आशा
शोभन इस भुवन में
बहाना स्नेह धारा।
संसार के सुख-दुख में हंसमुख हो चलते
रहना भरकर उर में उसकी अमृतधारा।
मन रे मेरे पथ में ...

इस तरह महिला समिति ने रवीन्द्र जयंती मनाकर यह सिद्ध कर दिया कि रवीन्द्र नाथ का प्रवेश मंच से रसोई तक में है, इसलिये वे स्वस्थ संस्कृति का आज भी प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। ❑

हिन्दी विभाग, विश्व भारती
शांति निकेतन (पश्चिम बंगाल)

विनोबा की पुस्तक शिक्षण विचार पिछले कई बरसों से अप्राप्य थी। यह पुस्तक हर शाला और हर अध्यापक के लिये एक अनिवार्य निधि है। हर अध्यापक के घर में इस किताब का होना न केवल आवश्यक है, बल्कि अत्यन्त सुखदायी भी होगा।
अभी हाल ही में इसका नया संस्करण छप कर आ गया है। प्रकाशक है - सर्व सेवा संघ, प्रकाशन, राजघाट, वाराणासी-२२१००१ पुस्तक का मूल्य है - मात्र अस्सी रुपये।
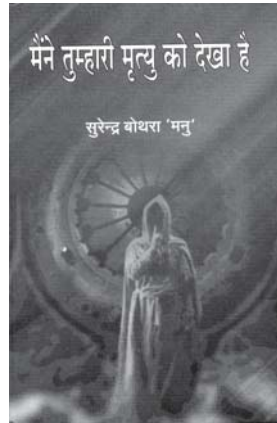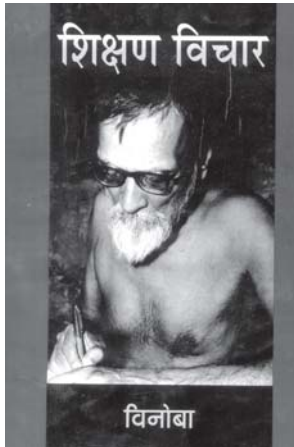
सुरेन्द्र बोथरा 'मनु' का नया कविता संकलन अभी हाल ही में प्रकाशित हुआ है। सुरेन्द्र बोथरा जैन दर्शन के अध्येता हैं और हिन्दी एवं अंग्रेजी में पिछले पचास वर्षों से पत्रकारिता करते रहे हैं।
सुरेन्द्र के पास कविता लिखने के लिये अपनी एक अलग भाषा है। अलग अंदाज है। दृष्टि भी अलग है और संवेदना भी।
पुस्तक बीकानेर से सर्जना से छपी है। पुस्तक का मूल्य है - एक सौ पचास रुपये मात्र। प्रकाशक का पता है - सर्जना, शिवबाड़ी रोड, बीकानेर-३३४००३।

हिन्दी और राजस्थानी में समान अधिकार से लिखने वाले सुप्रसिद्ध कवि डॉ. भगवतीलाल व्यास का नया कविता संकलन 'शब्दों की धरती है कविता' अभी हाल ही में प्रकाशित हुआ है। इस संकलन में भगवतीलाल जी की काव्य निष्ठा नये अंदाज में मुखर हुई है। वे चिन्तक भी हैं, अध्यापक भी हैं और कवि भी। कविता में कभी अध्यापक प्रकट हो जाता है तो कभी चिन्तक। दर्शन की दुनिया के निकट ले जाने वाली उनकी कविताएं नये भाव जगत तक ले जाती हैं। पुस्तक बोधि प्रकाशन एफ-७७, सेक्टर ९, रोड नं.-११, करतारपुरा इण्डस्ट्रियल एरिया, बाईस गोदाम, जयपुर-३०२००६ से प्राप्त की जा सकती है। पुस्तक का मूल्य है - मात्र एक सौ रुपया।

माह मार्च, २०१२ की अनौपचारिका में अध्यापक की योग्यता शीर्षक से जिस परीक्षा का उल्लेख किया है वह उसकी शैक्षणिक योग्यता का आकलन है। पर शिक्षक का सच्चा, पारदर्शी परीक्षक उसका शिष्य होता है। जो शिक्षक अपने कार्य व्यवहार से प्राथमिक, माध्यमिक अथवा यदा कदा महाविद्यालय स्तर तक के बालक के मन में अपने कार्य, व्यवहार व शैक्षिक योग्यता की अमिट छाप छोड़ देता है वही शिक्षक सफल, योग्यतम शिक्षक होता है। यह सच है कि अध्यापक अपने शिक्षार्थी की दृष्टि में अपने विषय का पूर्ण ज्ञाता हो पर इससे अधिक यह आवश्यक है कि कुछ भी पढ़ाए वह छात्र के समझ में आ जाये। छात्र उसे आत्मसात कर ले।

लेखक आज के लगभग अड़सठ साल पूर्व के कक्षा पांच में गणित पढ़ाने वाले परमश्रद्धेय ठा.लादूरामजी सोमानी के गणित अध्यापन से जहां अभिभूत हैं वहीं कक्षा नौ व दस में अंग्रेजी पढ़ाने वाले आदरणीय शिक्षक श्रीमान सक्सेना साहब से ऊब, अश्रद्धा की अनुभूति करता है। श्रीमान सक्सैना साहब यद्यपि शैक्षणिक दृष्टि से प्रशिक्षित स्नातक थे वहीं जहां तक मुझे याद है ये कक्षा में आकर कुर्सी पर बैठ कर समझे भला, गोये भला शब्द बोलते रहते और चाक से पढ़ाते समय खेलते रहते थे। श्याम पट्ट या अन्य पाठ्यसामग्री का उपयोग श्री सक्सैना साहब ने किया हो मुझे याद नहीं आया। दूसरी ओर कक्षा पांच में गणित अध्यापक श्री सोमानीजी मात्र मिडिल बीटीसी थे, कक्षा में आते तो पूरे पांच कालांश बोर्ड के सहारे खड़े रहते, छात्र को बुलाकर प्रश्न हल करवाते थे। शिक्षक की योग्यता का सच्चा परीक्षक उसका विद्यार्थी ही होता है। शिक्षक में शिक्षण का गुण मेरे मतानुसार जन्मजात होता है जिसे शिक्षा, प्रशिक्षण से उन्नत किया जा सकता है। ❑

स्व से उबर कर ...

❑

शिवचरण मंत्री

माह अप्रेल, २०१२ की अनौपचारिका में 'पंक्ति कभी पूर्णता नहीं देती' शीर्षक संपादकीय पढ़ा। पंक्ति को अनुशासन के साथ जोड़कर संपादक जी ने घेरे, गोल की जिस प्रकार वकालत की है तदर्थ साधुवाद। प्राथमिक, उच्च प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च माध्यमिक विद्यालयों में आयोजित कार्यक्रमों में बालक-बालिकाओं को पंक्तियों में बैठाकर पंक्तियों के पीछे शाला के व्यायाम शिक्षक प्रभावशाली शिक्षकों को अनुशासन बनाये रखने को सामान्यत: कार्यक्रम के सफल आयोजन के लिए बैठा देखा गया है, पर महाविद्यालयी स्तर पर पंक्तिबद्ध बैठी छात्राओं को सूनी आंखों से कार्यक्रम देखने के लिये विवश किया गया कुछ अटपटा लगा।

वैसे संपादक जी के इस मत से मैं सहमत हूं कि घेरे, गोल, समूह में एक दूजे का सम्पर्क, जुड़ाव रहता है और दर्शक, प्रदर्शक अधिक आनंदानुभूति करते हैं। पर ऐसी व्यवस्था खुले स्थानों पर या बालचर प्रवृत्ति में कैम्प फायर के समय अपनाई जाती देखी गयी है। गोला, घेरा पारस्परिक लगाव, जुड़ाव तो अवश्य करता है, परन्तु ऐसी व्यवस्था किसी उत्सव और समारोह में विद्यालयों में विशेष रूप से प्राथमिक व उच्च प्राथमिक, माध्यमिक और उच्च माध्यमिक विद्यालय स्तर पर अपनाना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। यह भी सच है कि पंक्तिबद्धता सैनिक पद्धति की एक तरह से आदेशात्मक व्यवस्था है। पर गोला, घेरे की बैठक व्यवस्था, विद्यालयों में प्रचलित नहीं। इस प्रकार पंक्तिबद्ध व्यवस्था ही विद्यालयों में चल रही है।

मेरे मतानुसार घेरे वाली व्यवस्था में कार्यक्रम संचालन में जहां कठिनाई होगी, वहीं व्यवस्था बनाये रखने में कठिनाई होगी। वैसे व्यवस्था स्वअनुशासन से श्रेष्ठ हो सकती है, पर सामान्य बालक-विशेष रूप से प्राथमिक स्तर के बालक स्वअनुशासित नहीं होते हैं अत: कार्यक्रम, उत्सव आदि को सफल बनाने के लिये दर्शकों, आगन्तुकों व कार्यक्रम प्रस्तोताओं की प्रस्तुतियों को सफल बनाने के लिये पंक्तिबद्धता आवश्यक है।

कक्षा स्तरीय या छोटे आयोजन घेरे या गोले पद्धति से आयोजित कर अधिक आनंद प्राप्त किया जा सकता है।

लीलाजी मोदी और जेठमलजी का पत्र भी अच्छा लगा। सम्भव है श्री रामावत मेरे इस मंतव्य से सहमत होंगे कि जहां अधिकांश शिक्षक वर्ग ही शिक्षा को शिक्षा न मानकर व्यवसाय मानता है वहां आज के समय में स्व से उभर कर शिक्षा के बारे में सोचने का समय किसके पास है। ❑

विकल्प

स्वराज यूनिवर्सिटी

❑

जहां कोई दीवारें नहीं, पर खुला आकाश है, जहां कोई शिक्षक नहीं, हर कोई ज्ञान का खोजी है, जहां कोई पूर्व-निर्धारित पाठ्यक्रम नहीं, पर स्व-निर्धारित तालीम है। जहां कोई परीक्षा नहीं, पर स्व-मूल्यांकन है, जहां कुछ रटना-रटाना नहीं, पर अनुभव आधारित सीखना है, जहां प्रतिस्पर्धा का जंग नहीं, पर समुदाय में जीने का आनंद है, ऐसी जगह का नाम है स्वराज यूनिवर्सिटी।

स्वराज यूनिवर्सिटी एक प्रयास है शिक्षा, जीवन तथा प्रकृति के गहरे रिश्ते को समझने का। स्वरचित शिक्षा, सामाजिक न्याय, पर्यावरण का शोषण किये बिना एक संतुष्ट जीवन जी पाना तथा अपने समुदाय के साथ रिश्ते को गहरा करना, यह स्वराज यूनिवर्सिटी प्रक्रिया का मुख्य हिस्सा है।

यहां पर विद्यार्थी अपने आपको खोजी बुलाते हैं, दो साल पूर्व शुरू हुई इस यूनिवर्सिटी में अब तक ३१ खोजी जुड़ चुके हैं। खोजी किसी बन्द कक्षा के बजाय खुले वातावरण में गुरु के साथ हाथों से काम सीखते हैं। शिक्षण की प्रक्रिया और दिनचर्या सभी खोजी मिलकर तय करते हैं। इस सबमें मदद हेतु फेसिलिटेटर हर पल तैयार रहते हैं।

खोजियों की विभिन्न रुचियों में खेती, स्व-उपचार, फिल्म मेकिंग, कुकिंग, चित्रकला, लेखन, सामाजिक मुद्दों पर काम करना आदि शामिल है।

स्वराज के बड़े नेटवर्क में ऐसे कई लोग शामिल हैं जो इन सब कलाओं में माहिर हैं और जो खोजियों के लिये गुरु की भूमिका निभाते हैं।

हर खोजी अपनी-अपनी यात्रा को अलग-अलग स्तर पर ले जाकर अपनी सीखने की प्रक्रिया को सुदृढ़ बनाता है। पहले बैच के ज्ञान और संतोष एकता परिषद के अहिंसक आंदोलन की सामाजिक पहल में डॉक्यूमेंटरी फिल्म मेकर की भूमिका से जुड़े हुए हैं। जयेश ने उदयपुर में अपने मित्र रोहित के साथ एक ऑर्गेनिक स्टोर और कैफे की शुरुआत की है। वहीं दूसरी बैच के मल्हार, कोकण, महाराष्ट्र की विभिन्न मछुआरों के समुदायों के साथ रह उनके काम और जीवन को बारीकी से समझने में जुटा है। विकास प्राकृतिक उपचार व आयुर्वेद को बारीकी से समझने का प्रयास कर रहे हैं, वहीं सखी, पत्र लेखन के रिवाज को दोबारा जीवन देने के लिए 'प्रेम पत्र प्रोजेक्ट' कर रही है।

स्वराज की सीखने की प्रक्रिया में यात्रा की काफी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। हम इन्हें लर्निंग जर्नी कहते हैं। हर यात्रा का अलग मकसद होता है। पिछले दो सालों में पूणे, अहमदाबाद और चंडीगढ़ की यात्रा हुई जिसमें वहां के विभिन्न कलाकार, सामाजिक कार्यकर्ता एवं विभिन्न शैलियों से जुड़े हुए लोगों और समुदायों से मिलना व सीखना होता है।

साइकिल यात्रा, जिसमें यात्री बिना पैसा, मोबाइल, घड़ी, दवाई के ६ से ७ दिन की ऐसी यात्रा पर निकलते हैं जहां गांव के असली जीवन से रूबरू होते हैं और शहरीपन और ग्लोबलाइज्ड वर्ल्ड में खो चुकी मनुष्यता को वापस पाते हैं।

हाल ही में संपन्न हुई पालपुर यात्रा में दोनों बैच के खोजी कंदबाड़ी स्थित संभावना ट्रस्ट अन्ना हजारे के 'एन्टी करप्शन मूवमेंट' के मुख्य लोगों में से एक प्रशांत भूषण द्वारा स्थापित एक पहल है, जहां राजनीति और कानून को समझने के इच्छुक लोग उसे गहराई से सीखने और प्रयोग करने की प्रक्रिया जानने-समझने आते हैं। क्योंकि यह एक वैकल्पिक स्थापना है, जहां हमारे जीवन को प्रभावित करने वाले मुद्दों के भविष्य की नींव रखी जायेगी, यहां का हर मकान मिट्टी से बना है और उसमें प्रयोग की गई हर सामग्री 'इको फ्रेंडली' और उसी जगह से है।

इन १२ दिनों की यात्रा में हमने वहां हो रहे ईको-कन्स्ट्रक्शन को समझा और उसमें काफी हद तक काम भी किया। इसमें मिट्टी की ईंटे बनाना और मिट्टी की दीवार बनाना शामिल है। वहां गांव ही नहीं, वरन शहरी वातावरण को भी नजर में रखते हुए मिट्टी के मकान के मॉडल थे।

यात्रा के दौरान हम एक दिन मनीष सिसोदिया से भी मिले जो एंटी करप्शन मूवमेंट में जुड़े हैं और उनसे उस आंदोलन व 'लोकपाल' पर चर्चा हुई। साथ ही कंदबाड़ी में रह रहे कुछ पर्यावरण व सामाजिक कार्यकर्ताओं से भी गहन चर्चा हुई।

इस यात्रा का मकसद हिमाचल के लोगों के तौर-तरीकों और संस्कृति को समझना भी था। वहां के लोगों के साथ काफी चर्चा हुई और उनके संगीत से भी हम एक दिन रूबरू हुए।

स्वराज यूनिवर्सिटी की यह कोशिश है सच्ची आजादी को समझने और पाने की।❑

जयपुर से भगवान अटलानी का SMS

अनौपचारिका मई, २०१२ नव युगलों, नव दम्पत्तियों और अभिभावकों के प्रशिक्षण की महत्ता स्थापित करते सुलिखित संपादकीय के लिये साधुवाद। ❑

कार्टून : जो संसद के लिये पहेली बन गया

❑

पिछले दिनों हमारी संसद ने साठ बरस पूरे किये। षष्ठीपूर्ति के जलसे के ठीक दूसरे दिन के बाद संसद में एक हंगामा हुआ। हंगामा एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा प्रकाशित राजनैतिक विज्ञान की पाठ्यपुस्तक में छपे एक कार्टून के कारण शुरू हुआ। यह कार्टून भी साठ बरस पहले बनाया गया था। हमारी संविधान सभा तब हमारा संविधान बनाने में जुटी थी। संविधान सभा के प्रमुख थे–बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर। संविधान सभा की कार्यवाही बहुत धीरे–धीरे चल रही थी। लगभग सरकती–सरकती। तब शंकर्स वीकली के शंकर पिल्लै ने यह कार्टून बनाया था जिसमें दिखाया गया था कि संविधान सभा के प्रमुख एक घोंघे (स्नेल) पर बैठे हैं। उनके हाथ में भी चाबुक है और उनके पीछे खड़े जवाहर लाल नेहरू के हाथ में भी चाबुक है। दोनों हांक लगा रहे हैं कि घोंघा जल्दी चले और संविधान सभा अपनी कार्यवाही त्वरा के साथ संपन्न करे। नेहरू जी और बाबा साहेब दोनों की मंशा एक ही थी। कार्टून बनाने वाला का व्यंग्य संविधान सभा की धीमी गति पर था। गति का यह धीमापन दोनों राजनेताओं की इस इच्छा के बावजूद था कि संविधान सभा जल्दी से अपना काम संपन्न करे। पूरा व्यंग्य हमारी संविधान सभा की प्रक्रिया पर था और उसकी प्रक्रियागत चाल पर था। इस व्यंग्य में कहीं किसी का अपमान नहीं था, अवमान नहीं था, मगर हमारी संसद के सामने पता नहीं क्यों इतना सा अर्थ भी संप्रेषित नहीं हो सका और सभी प्रबुद्ध लोग एक स्वर में हंगामा खड़ा कर बैठे। ❑

संपादक, प्रकाशक एवं मुद्रक रमेश थानवी के लिए कुमार एण्ड कम्पनी, जयपुर में मुद्रित

रजिस्ट्रार ऑव न्यूज पेपर, नई दिल्ली के द्वारा पंजीकृत मासिक पत्रिका | RNI 43602/77
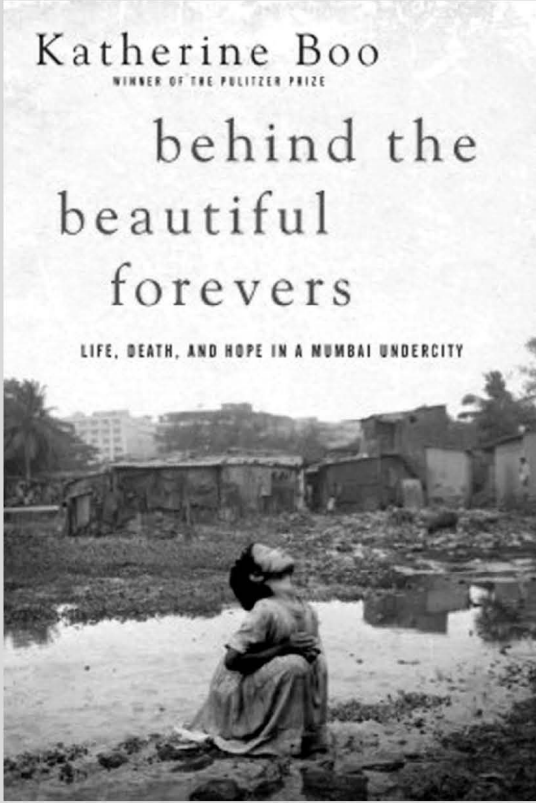
कैथरीन बू अमरीका की रहने वाली एक नौजवान पत्रकार हैं। उसे भारत से प्यार है। भारतीय लोक जीवन को करीब से देखना चाहती हैं। उसके बीच जीना चाहती हैं। वह अक्सर भारत आती हैं। मुम्बई की एक कच्ची बस्ती अण्णावाड़ी में भी उसने कई दिन बिताये हैं। मुखपृष्ठ का चित्र कैथरीन बू का लिया हुआ चित्र ही है। उसकी एक किताब आयी थी और पूरे विश्व में प्रसिद्ध भी हुई थी। उस किताब में अण्णावाड़ी की जिन्दगी की जीवन्त तस्वीरें हैं। मर्मस्पर्शी वर्णन है। भारतीय लोक को करीब से देखने और जानने का यह पुस्तक एक अनुपम स्रोत है। पाठक इस पुस्तक को खोज कर प्राप्त कर सकते हैं और पढ़ सकते हैं। ❑ सं.

मुम्बई की कच्ची बस्ती
अण्णावाड़ी का एक
दमकता मुखड़ा
➔